सामयिक प्रकाशन

समाज और इतिहास

नवीन शृंखला

6

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और प्रतिबंधित साहित्य, संयुक्त प्रांत के विशेष संदर्भ में (1907–1935)

नरेन्द्र शुक्ल

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
2014

NMML Occasional Paper

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय

© नरेन्द्र शुक्ल, 2014
सर्वाधिकार सुरक्षित। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भी अंश का दोबारा प्रयोग/पुनरोत्पादन किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता। इसमें व्यक्त विचार, अर्थनिर्धारण तथा निष्कर्ष पूर्णतः लेखक के हैं और किसी भी तरह, पूर्णरूपेण अथवा अंशतः, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय के विचारों को नहीं दर्शाते।

प्रकाशक

नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय
तीन मूर्ति भवन
नई दिल्ली–110011
ई.मेल : ddnehrumemorial@gmail.com

आईएसबीएन : 978-93-83650-17-0

मूल्य रूपये 100/- ; यूएस $ 10

पृष्ठ सज्जा और मुद्रण : ए.डी. प्रिंट स्टूडिओ, 1749 बी/6, गोविन्द पुरी, एक्सटेंशन कालकाजी, नई दिल्ली–110019. ई.मेल : studio.adprint@gmail.com

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और प्रतिबंधित साहित्य, संयुक्त प्रांत के विशेष संदर्भ में (1907–1935)*

नरेन्द्र शुक्ल**

20वीं सदी के पहले दशक में तीन प्रमुख घटनाओं, बंगाल विभाजन और इसका विरोध, कांग्रेस में नये आक्रामक नेतृत्व का उभार और सैन्यवादी आंदोलन के प्रादुर्भाव, ने ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन को विचलित कर दिया था। सरकार ने यह महसूस किया कि भारतीय राष्ट्रवादी समाचार पत्र न केवल प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तरीके से सरकार विरोधी भावनाओं को भड़का रहे हैं, बल्कि वे लोगो को हिंसा के लिए भी उकसा रहे हैं।[1] ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन भारतीय प्रेस के इस फैलाव एवं उसके असर से परिचित था इसलिए भारत में तेज़ी से फैल रही अशांति का हल निकालने के लिए, प्रशासन ने इस बात पर विचार करना शुरू कर दिया था कि अभियोगों की संख्या तीव्र करने से संभवतः विवादास्पद लेखन में कमी आए। किन्तु भारत के दोनों नीति निर्धारकों, इंग्लैण्ड में मॉर्ले (भारत राज्य सचिव) तथा भारत में मिन्टो (वायसराय), द्वारा इस समस्या का हल निकालने के रास्ते अलग थे। मॉर्ले जो सीधे तौर पर संसद के प्रति जवाबदेह था, वह इस मुद्दे के हल के लिए एक विस्तृत और दार्शनिक विचार दृष्टि रखता था। वहीं मिन्टो नौकरशाही की मांगों के प्रति अधिक संवेदनशील था। उसका कहना था कि, ''एक छोटी सी सेना के साथ हम यहां, लाखों ऐसे ज्वलनशील कारकों से घिरे हैं जिसका पश्चिमी जगत को पता भी नहीं है, हमें

* यह व्याख्यान 14 मई, 2013 को नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली में दिया गया था।

** नरेन्द्र शुक्ल, नेहरु स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय में कनिष्ठ फेलो हैं।

1. के.जी.जोगलेकर, पृ. 36, 2005.

निश्चित रूप से मजबूत होना होगा।'' अंततः यह विचार किया गया कि, सामान्यतः धारा 153 ए व 124 ए के अंतर्गत अभियोग हेतु गवर्नर जनरल से अनुमति लेनी होती है, जिससे अभियोग में देरी होती है, इसलिए यह संकल्प व्यक्त किया गया कि स्थानीय सरकारें धारा 153 ए एवं 124 ए के अंतर्गत बिना गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के भी अभियोग चला सकती हैं। जब मिन्टो ने इस प्रस्ताव को तार द्वारा मॉर्ले के पास भेजा तो मॉर्ले ने इस पर ऐतराज जताते हुए कहा कि सरकार को पहले निवारक उपाय, जैसे अनुच्छेद 108 के अंतर्गत ज़मानत, प्रतिभूति राशियां बढ़ाने आदि करना चाहिए न कि प्रेस अभियोग बढ़ाने पर जोर देना चाहिए। किन्तु फिर भी मिन्टो का विचार था कि प्रतिभूति कार्यवाहियां काफी समय लेती हैं जिससे दोषी समाचार पत्रों को और प्रचार मिल जाता है। 3 जून, 1907 को संकल्प प्रकाशित हो गया।[2] मिन्टो की दृष्टि में कड़े कानूनों की आवश्यकता के कई कारण थे। दिसम्बर 1907 के बाद *बुलेट और बम* भारतीय राजनीति मे आम होने लगा था। सैन्यवादियों ने भारतीय अधिकारियों एवं भेदियों पर बार–बार आक्रमण किया। भारतीय समाचार पत्रों ने उनकी अतिवादी विचाराधारा का बचाव करने से बचते हुए भी उनके सर्वस्व समर्पण, त्याग और मातृभूमि के लिए सब कुछ बलिदान कर देने की भावना की प्रशंसा की।[3] दूसरी तरफ इन घटनाओं ने ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन को खुलकर दमन चक्र चलाने का अवसर दे दिया।

जून, 1908 में सरकार ने बड़ी जल्दबाज़ी में दो दमनकारी अधिनियम पारित किए। इसमें से एक 'विस्फोटक अधिनियम' *(एक्सप्लोसिव एक्ट)* था तथा दूसरा, समाचार पत्र (अपराध प्रोत्साहन) अधिनियम VII था। इसने स्थानीय सरकार को, अतिवादी व्यक्तियों एवं समाचार पत्रों के विरूद्ध अनेक शक्तियां दीं। स्थानीय सरकार कई मामलों में काफी शक्तिशाली हो गई। उदाहरण के तौर पर जिलाधीश, जिसे जिले के प्रमुख अधिकारी होने के नाते किसी पत्र पर दोषारोपण करने का अधिकार था वही मैजिस्ट्रेट के तौर पर उस पत्र के विरूद्ध न्यायकर्ता भी होता था।[4] मैजिस्ट्रेट के पास प्रेस को जब्त कर लेने तक की शक्तियां

2. एन. गेराल्ड बैरियर, पृ0 19–22, 1976.
3. एन. गेराल्ड बैरियर, पृ0 26–27, 1976.
4. कीर्ति नारायण, पृ0 26–27, 1998.

थी। स्थानीय सरकार न केवल मुद्रक या प्रकाशक के पूर्व घोषणा पत्र को रद्द कर सकती थी बल्कि उसे उस या अन्य किसी समाचार पत्र की घोषणा पत्र देने से प्रतिबंधित कर सकती थी। तिलक को लेकर इस अधिनियम के अंतर्गत नौ अभियोग चले जिसमें से सात प्रेसों को 'जब्ती' से गुजरना पड़ा था।[5] सरकार ने प्रयासपूर्वक *युगांतर, वन्देमातरम्, संध्या* इत्यादि पत्रों को कुचल दिया।[6] किन्तु जहां एक ओर देश में अतिवादी साहित्य एवं पत्रों को कुचला जा रहा था, वहीं संयुक्त प्रांत में अतिवादी पत्रकारिता की एक नई लहर प्रारम्भ हुई। *स्वराज्य, कर्मयोगी* और *हिन्दी प्रदीप* जैसे पत्र इसके वाहक बने।

संयुक्त प्रांत के सरकार विरोधी पत्रों में इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले पत्र *स्वराज्य* का महत्वपूर्ण स्थान है। उर्दू भाषा में प्रकाशित होने वाले *स्वराज्य* की स्थापना, लाला लाजपत राय एवं अजीत सिंह की रिहाई के अवसर पर 9 नवम्बर, 1907 को इलाहाबाद में की गई। इसके पहले संपादक, प्रकाशक, मुद्रक, शान्ति नारायण थे। 30 अप्रैल, 1908 को मुज़फ्फरपुर में न्यायधीश किंग्सफोर्ड की हत्या के प्रयास पर 23 मई, 1908 को शान्ति नारायण ने 'व्हाई वाज़ बम थ्रोन'(बम क्यों फेंका गया था) शीर्षक से *स्वराज्य* में एक लेख प्रकाशित किया। इस लेख में लिखा गया था कि

> *आंग्ल–भारतीय समुदाय इस बम घटना के लिये भारतीयों को ही जिम्मेदार मानते हैं। वे इसके लिए केवल कुछ व्यक्तियों को ही नहीं, बल्कि विधायिका के सदस्यों से लेकर सड़क के आदमी तक पर आरोप लगा रहे हैं। उनका सोचना गलत है किन्तु अगर वे और उनके साथी, नौकरशाह, इसी तरह क्रोध के वशीभूत होकर काम करते रहेंगे तो वह दिन अवश्य आएगा (जब भारत के सभी लोग मिलकर बम फेंकेगे) और तब वे (आंग्ल भारतीय समुदाय) पश्चाताप करेंगे*[7]*।...*

5. बी.आर.शर्मा, पृ0 27, 1993.
6. कीर्ति नारायण, पृ0 27, 1998.
7. गृह विभाग, कार्यवाही रिपोर्ट, 1908 पत्रावली संख्या, 51–53 ए, पृ0 4–5, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

कुछ ही दिनों पश्चात् 30 मई, 1908 को *स्वराज्य* में 'सच्ची और झूठी सहानुभूति', (ट्रू एण्ड फाल्स सिम्पैथी) शीर्षक से एक और लेख छपा। इस लेख में कहा गया :

> *हमारी दृष्टि में हमारी सच्ची और गहरी सहानुभूति उन बंगाली युवकों के साथ है जो इस घटना से संबंध के कारण गिरफ्तार हुए हैं, और अपने भाग्य से मिलने के लिए साहसपूर्वक अंग्रेजी अदालत में कयामत का इंतजार कर रहे हैं।*[8]

शान्ति नारायण को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा राजद्रोह के आरोप में धारा 153 ए व 124 ए के अंतर्गत, लेख 'बम क्यों फेंका गया था' के लिए 18 महीने का कठोर कारावास एवं 500 रूपये का जुर्माना तथा 'सच्ची और झूठी सहानुभूति' के लिए दो वर्ष का कठोर कारावास एवं 500 रूपये जुर्माने की सजा सुनाई गई। यह सजाएँ एक के बाद एक चलनी थीं। जुर्माने न अदा करने की दशा में तीन महीने के कठोर कारावास की सजा और भुगतनी थी।[9]

शान्ति नारायण के बाद बाबू राम हरि ने *स्वराज्य* का संपादकत्व संभाला। इनके काल में एक के बाद एक, तीन प्रकाशनों, 'बम या बहिष्कार', 'जालिम', व 'सैय्यद सज्जाद हुसैन साहिब' सज्जाद इलाहाबादी के राजनैतिक कसीदे को लेफ्टीनेंट गवर्नर ने राजद्रोह पूर्ण माना। इलाहाबाद के सेशन न्यायधीश रूस्तमजी की अदालत में धारा 124 ए व 153 ए के अंतर्गत मुकदमा चलाया गया। अपना निर्णय देते हुए सी रूस्तमजी ने कहा :

> *'बम या बहिष्कार'... पूरा का पूरा लेख स्वयं में, भारत में कानून द्वारा स्थापित भारत सरकार के विरूद्ध घृणा, असंतोष, और अवमानना का स्वरूप है। पहले दोनों गद्यांश, युरोपियन और भारतीयों के मध्य शत्रुता व घृणा का भाव फैलाते है... आरोपी आगे के गद्यांश में भी कहता है कि, ...''अगर*

8. गृह विभाग, कार्यवाही रिर्पोट, 1908, पत्रावली संख्या 51–53 ए, प्र0 6, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

9. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, वही, पृ0 1

भारतीय उनसे जीतना चाहते हैं तो उन्हें अपने हथियार उनसे अच्छे करने पड़ेंगे। यह केवल हथियारों की शक्ति ही है जिससे कुछ भी संभव है। वही सफल है जिसके पास शक्तिशाली व उपयुक्त हथियार हैं विश्व के अन्य शासित और कुचले देशों से सीख लेकर कुछ प्रगतिशील देशभक्त भारतीयों ने गोलों और गोलियों के विरूद्ध बमों की तैयारी की है... ।''[10]

अंततः इन प्रकाशनों के लिए सेशन न्यायधीश ने 10 दिसम्बर, 1908 को दिए निर्णय में *स्वराज्य* के संपादक, बाबू राम हरि खत्री को दोषी मानते हुए प्रत्येक लेख के लिए सात-सात वर्ष के लिए देश निकाला की सजा सुनाई जो एक के बाद एक दिये जाने थे।[11] अगले संपादक नन्द गोपाल द्वारा प्रकाशित तीन लेखों, *द ट्रू नेचर ऑफ रिलिजन, डिवोशन टू गॉड,* एवं *द रियल नीड्स ऑफ इंडिया* के लिए धारा 124 ए के अंतर्गत इलाहाबाद के सेशन न्यायधीश, सी. रूस्तमजी ने संपादक को दोषी ठहराते हुए प्रत्येक लेख के लिए अलग अलग दस–दस वर्षों के लिए देश निकाला की सजा सुनाई। 25 वर्ष की आयु वाले नन्द गोपाल की यह सजा एक के बाद एक चलनी थी।[12] ज्ञातव्य है कि *स्वराज्य* के आठ संपादकों को कुल मिलाकर 125 वर्ष की सजा हुई।[13]

इलाहाबाद से ही बालकृष्ण भट्ट के संपादन में प्रकाशित होने वाले पत्र *हिन्दी प्रदीप* के अप्रैल 1908 के अंक में पण्डित माधव शुक्ल की कविता 'बम क्या है' प्रकाशित हुई, जिसके कारण सरकार ने इस पत्र पर रोक लगा दी।

इस बीच भारत में ब्रिटिश सरकार ने महसूस किया कि राजद्रोहपूर्ण लेख एवं कार्यों की जानकारी के लिए गुप्तचर ढांचे को और मज़बूत

10. गृह विभाग, कार्यवाही रिपोर्ट, 1908, पत्रावली संख्या, 124–128 पृ0 3–6, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
11. गृह विभाग, कार्यवाही रिपोर्ट, 1908, पत्रावली संख्या, 124–128, वही, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
12. गृह विभाग, पॉलिटिकल ए, कार्यवाही रिपोर्ट, 1910 , पत्रावली संख्या, 81–95, पृ0 8, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
13. ब्रह्मानन्द, पृ0 49, 1986.

करना चाहिए। जिसके लिए सर्वप्रथम भारत में ब्रिटिश सरकार ने अतिरिक्त कोष की व्यवस्था की जिसके द्वारा राजनीतिक कार्यों हेतु लगने वाली स्थानीय पुलिस की संख्या में वृद्धि की गई। निम्नलिखित सारणी में 1907 –1910 के मध्य सी.आई.डी. निरीक्षकों एवं सिपाहियों की संख्या में वृद्धि को साफ देखा जा सकता है –

सी.आई.डी. निरीक्षक एवं सिपाही, 1907–1910.

	मद्रास	संयुक्त प्रांत	बंगाल	सेन्ट्रल प्रॉविन्स	पंजाब	बम्बई	कुल संख्या
1907	27	74	57	44	34	48	284
1908	56	88	64	47	39	57	351
1909	64	89	165	57	46	64	485
1910	63	134	165	58	54	77	551

इम्पीरियल गुप्तचर विभाग ने भी इसी तरह अपने जासूसी कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि की। ठीक इसी समय केन्द्रीय सचिवालय ने प्रेस सामग्री की प्राप्ति और व्यवस्था को सुधारने के प्रयास किए। 1908 के सर्वेक्षण से पता चलता है कि वर्नाक्युलर समाचार पत्रों के परीक्षण में पहले से, इंगित करने वाले बदलाव आए। उदाहरण के लिए संयुक्त प्रांत में केवल मुख्य सचिव को अनुवाद भेजने के लिये एक पूर्णकालिक निरीक्षक और कर्मचारी रखा गया, जो भारत में ब्रिटिश सरकार को भेजने के लिए वार्षिक रिपोर्ट तैयार करता था। जिला मजिस्ट्रेट नये समाचार पत्र के दृष्टिकोण के संबंध में जिले की पुलिस को सहायता देते थे।[14] सारे देश से एकत्रित होकर राजद्रोही गतिविधियों की जो सूचनाएं भारत सरकार तक पहुंच रही थीं, उनसे वह अत्यधिक चिंतित थी।

उदाहरण के तौर पर, पूर्वी बंगाल के मुख्य सचिव *एच. लीमेसरियर (Mr H. Lemesurier)* ने फरवरी 1909 में भारत में ब्रिटिश सरकार के मुख्य सचिव को पत्र लिखकर बताया कि, ''दुकानों और फेरीवालों द्वारा तथाकथित राष्ट्रीय शहीदों (खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, कन्हाई लाल

14. एन. गैराल्ड बैरियर, पृ0 33, 34ए, 1976.

दत्त एवं सत्येन्द्र नाथ बोस) के चित्रों की बिक्री करते पाया गया है। विशेषकर स्वदेशी सामानों के व्यापारियों ने बड़ी संख्या में चित्रों को आयात किया है और बेचने के लिए दुकानों पर भेज रहे हैं। ये चित्र स्कूल मास्टरों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा अपने शिष्यों और युवाओं के बीच बेचे जा रहे हैं।[15] लोगों के बीच इन चित्रों के प्रसार और इससे उत्पन्न सरकार विरोधी भावनाओं को सरकार सैन्यवादी विचारों और आंदोलन से जोड़कर देखती थी, इसलिए भारत में ब्रिटिश सरकार के सचिव हेरॉल्ड स्टुअर्ट ने 13 मई, 1909 को संयुक्त प्रांत सहित लगभग सभी प्रांतों को प्रस्ताव किया कि, ऐसे सभी चित्रों, सामग्री व कार्यों को जो बॉम्बे जिला पुलिस एक्ट 1890 के अनुच्छेद 42(I)[16] तथा बॉम्बे शहर पुलिस एक्ट, 1902 {1902 का बॉम्बे एक्ट IV का अनुच्छेद 23 (2) (e)}[17] के अंतर्गत आते हैं, आवश्यक हो गया है कि सामान्य पुलिस एक्ट, (1861 का एक्ट V) में जोड़ दिया जाए।[18]

मिन्टो सरकार, ऐसे प्रावधानों द्वारा भारतीय परिस्थितियों को ठीक करने का प्रयास कर रही थी। हांलाकि मॉर्ले अभी भी किसी बड़े कानूनी बदलाव के लिए तैयार नहीं था। किन्तु तभी एक बड़ी घटना घटी। 1 जुलाई, 1909 को एक युवा क्रांतिकारी, मदन लाल ढ़ीगंरा ने 'कर्ज़न

15. गृह विभाग, जुडीशियल ए, कार्यवाही रिपोर्ट, मई 1909, पत्रावली संख्या 130–134, पृ0 3, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

16. (42–I) जिला मैजिस्ट्रेट या उसकी अनुपस्थिति में उसके आदेश पर प्रथम श्रेणी का मैजिस्ट्रेट अपने न्यायिक क्षेत्र के किसी भी कस्बे या गांव में सार्वजनिक या व्यक्तिगत को अधिसूचना जारी कर वहां किसी भी प्रकार का हथियार, पत्थर के औजार, किसी भी प्रकार की मिसाइल, या व्यक्तियों की प्रदर्शनी, अथवा मृत शरीर या उसका चित्र अथवा सार्वजनिक रोदन अथवा गीत गाना, अथवा किसी प्रकार की नकल उतारना अथवा चित्रों को बनाना, प्रदर्शनी और प्रसार, चिन्ह, तख्तियां या अन्य कोई चीज जो नैतिकता या शालीनता को आक्रोशित करे अथवा उस मैजिस्ट्रेट की दृष्टि में विभिन्न धर्मों के बीच धार्मिक अलगाव भड़काए या सार्वजनिक शान्ति अथवा अन्य घटना के लिये उकसाए अथवा कानून या किसी अधिकृत व्यक्ति का विरोध या उल्लंघन करे, को प्रतिबंधित कर सकता है।

17. 23 (2) पुलिस कमिश्नर को जब भी और कहीं भी अगर सार्वजनिक शांति या सुरक्षा के लिये, आवश्यक लगता हो तो वह सार्वजनिक या व्यक्तिगत रूप से किसी को प्रतिबंध हेतु अधिसूचित कर सकता है।

18. गृह विभाग, जुडीशियल ए, कार्यवाही रिपोर्ट, मई 1909, संख्या 130–134 ए, पृ0 11, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

वायली' की हत्या कर दी। उक्त घटना पर टिप्पणी करते हुए मिन्टो ने कहा :

> ''अन्ततः घर के लोगों (इंग्लैण्ड वासियों) को राजद्रोह को 'सेहने' (पालने) के खतरों की पहचान हुई होगी... न केवल अपने लिए बल्कि, भारत में हमारे लिए भी... मुझे भय है कि तथाकथित स्वतंत्रता की अतिरंजित पूजा, ब्रिटिश लोगों को कठिन तथ्यों से अनजान बना रही है।... जिसका परिणाम इस तरह भयानक रूप से मिला है। मुझे विश्वास है यह बेकार नहीं जायेगा।''[19]

इस घटना से इंडिया ऑफिस के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। इधर भारत में मुद्रित साहित्य द्वारा राजद्रोह से निपटने के प्रयास में गवर्नर जनरल ने राजभक्त समाचार पत्रों को राजसहायता (सब्सिडी) देने जैसे प्रयोगों पर और भी बल दिया जिससे शत्रुतापूर्ण रवैय्या रखने वाले प्रेसों से प्रकाशित होने वाली झूठी खबरों का मुकाबला किया जा सके।[20] हांलाकि जहां तक संयुक्त प्रांत के *लेफ्टीनेंट गवर्नर* का प्रश्न है, वह स्वयं 'राजभक्त पत्रों को राजसहायता की योजना' से बहुत सहमत नहीं थे किन्तु फिर भी प्रायोगिक तौर पर संयुक्त प्रांत में यह योजना लागू करने की बात स्वीकारी।[21]

किन्तु गुप्तचर व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण, राजभक्त समाचार पत्रों को सहायता जैसे प्रयोगों, और राजद्रोह के अधिक अभियोग जैसी नीतियों के बावजूद प्रशासन मुद्रित साहित्य से राजद्रोह की गतिविधियों को रोक पाने में असफल रहा था, इसीलिए प्रशासनिक पत्राचारों में साफ देखा जा सकता है कि प्रशासन इसके लिए लगातार किसी ठोस उपाय को खोजने का प्रयास करता रहा था। इस संबंध में भारत में ब्रिटिश सरकार ने विधि सलाहकार बी. लिन्डस से दो प्रश्नों पर विचार करने को कहा था–

1. क्या देश में प्रेस पर और अधिक कड़े नियंत्रण के लिए किसी विधायी उपाय की आवश्यकता है?

19. एन. गैराल्ड बैरियर, पृ0 38, 1976.
20. एन. गैराल्ड बैरियर, पृ0 32, 1976.
21. राजकीय अभिलेखागार लखनऊ (रा.अ.ल.) सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 273, पृ0 7, 8, 9, 11, 17, 21 सी, 21 डी

2. अगर आवश्यकता है तो उसका विधायी स्वरूप क्या हो?

बी. लिन्डस ने विधि सलाहकार के तौर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा :

> ''पहले प्रश्न का तो एक ही उत्तर हो सकता है कि राजद्रोही साहित्य के प्रकाशन व प्रसार को रोकने के लिए वर्तमान कानून पूरी तरह से शक्तिहीन है इसलिये नए उपायों की अत्यन्त आवश्यकता है।... राजद्रोह वास्तव में एक विशिष्ट रोग की तरह है, और ऐसे रोग को ठीक करने के लिये विशेष और कठोर उपाय की आवश्यकता होती है... वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट 1878, जो राजद्रोह पूर्ण साहित्य को दबाने के लिए लाया गया था, उसका कभी प्रयोग न किया जाना, यह नहीं दिखाता है कि वह एक अनुपयोगी उपाय था... दूसरी तरफ धारा 124 ए में संशोधन असफल सिद्ध हो चुका है... अदालतों के दंड का प्रभाव, मुकदमों की देरी के कारण खत्म हो जाता है तथा मुकदमों का प्रचार परिस्थिति को और बिगाड़ देता है।... राजद्रोहपूर्ण साहित्य को दबाने सम्बन्धी कानून पर विचार करते समय मेरी राय है कि यह केवल समाचार पत्रों पर लागू न हो बल्कि यह प्रेस से निकलने वाली सभी प्रकार की वस्तु, पुस्तक, पैम्फलेट, बड़ चिट्ठा, विज्ञप्ति, मुद्रित प्रति या जो कुछ भी हो, पर भी लागू हो जैसा कि वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट 1878 के अनुच्छेद 1 में है। ...नए कानून में दूसरी जो महत्वपूर्ण चीज होनी चाहिए कि प्रेस की जब्ती के लिए अभियोग की बाध्यता न हो, तीसरा यह भी कि भारत से बाहर से आने वाले राजद्रोहपूर्ण साहित्य पर पूरी तरह प्रतिबंध होना चाहिए... और अंतिम बात जो कानून में होनी चाहिए, वह यह है कि जिस प्रेस से भी धारा 124 ए का उल्लंघन करने वाली सामग्री निकले, उसे भी जब्त करना चाहिए अभी तक अगर धारा 124 ए के अंतर्गत आरोपी व्यक्ति अगर प्रेस का स्वामी नहीं है तब यह अनुच्छेद प्रेस को जब्त करने की इज़ाजत नहीं देता''।[22]

22. रा.अ.ल. पॉलिटिकल, पत्रावली संख्या 320, पृ0 2–5.

विधि सलाहकार के परामर्श, देशभर के नौकरशाहों द्वारा एक कठोर प्रेस कानून के पक्ष में मत एवं देश की परिस्थितियों को देखते हुए गवर्नर जनरल ने भारतीय प्रेस अधिनियम, 1910 के रूप में नए प्रेस कानून को लाने का निर्णय ले लिया। भारतीय प्रेस अधिनियम, 1910 में मजिस्ट्रेट और स्थानीय सरकार को प्रेस और समाचार पत्रों की जब्ती, तलाशी व जमानत राशि की जब्ती जैसी बड़ी शक्तियां दी गईं। प्रेस अधिनियम 1910 ने डाक विभाग को भी शक्ति दी थी कि वह किसी संदेहास्पद समाचार पत्र, पुस्तक, या अन्य दस्तावेज को रोक सकता था, जिसे बाद में स्थानीय सरकार के निर्देशानुसार नष्ट किया जा सकता था।

1910 के प्रेस अधिनियम से निश्चित रूप से भारतीय आंदोलनकारियों को सामान्य जन तक अपनी बात सहज ढंग से पहुंचाने में अवरोध उत्पन्न हुआ। किन्तु उन्होंने इस अवरोध को दूर करने का नया तरीका ढूंढ निकाला। उन्होंने अपने विचारों को नाटकीय प्रदर्शनों के माध्यम से प्रसारित करना प्रारम्भ कर दिया। ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन इससे चिंतित हो उठा था। 6–9 मई, 1910 को भारत में ब्रिटिश सरकार के अतिरिक्त उप सचिव, एच.सी. वुडमेन ने संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव को पत्र लिखकर कहा :

> ''भारत सरकार निश्चित कारणों से यह विश्वास करती है कि, भारतीय प्रेस अधिनियम (1910 का–I) के पारित होने के बाद नाटक कंपनियों और तथाकथित जात्रा पार्टियों द्वारा राजद्रोह पूर्ण विचारों वाले नाटकों के द्वारा प्रदर्शन के माध्यम से राजद्रोही विचारो का प्रसार बड़ी तेजी से बढ़ा है। 'ड्रामेटिक परफारमेंस एक्ट, 1876 (1876 का XII) द्वारा स्थानीय सरकारों को इन परिस्थितियों से निपटने की सारी शक्तियां दी गई हैं। तदनुसार मैं लेफ्टीनेंट गवर्नर का इन प्रावधानों की ओर ध्यान दिलाते हुए सुझाव देना चाहता हूं कि वे इसके माध्यम से इस (राजद्रोह) प्रवृत्ति को रोकने में सफल होंगे।''[23]

23. रा.अ.ल. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या 260, पृ0 5.

संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव को यह पत्र मिला ही था कि, गोरखपुर के उत्तर पश्चिम रेलवे थिएटर में 'टेम्परेन्स' (संयम) शीर्षक वाले एक नाटक के प्रदर्शन का विवाद सामने आ गया। इस नाटक के प्रदर्शन का प्रश्न तो था ही, किन्तु इसके प्रदर्शन को अनुमति या रोक देने की शक्ति मजिस्ट्रेट को है कि नहीं, प्रशासन में इसी बात पर मतभेद उभर आया। वास्तव में *'ड्रामेटिक परफारमेंस एक्ट 1876'* के अनुच्छेद 3 में यह निर्णय लेने का अधिकार कि कोई नाटक प्रदर्शन योग्य है अथवा नहीं, स्थानीय सरकार को दिया गया था जो अपना निर्णय मजिस्ट्रेट के द्वारा कार्यान्वित करा सकती थी। जबकि, फरवरी 1909 में संयुक्त प्रांत ने एक गोपनीय विभागीय निर्देश जारी करते हुए पुलिस को कहा था कि, राजद्रोही प्रकृति के नाटकों की सूचना वह मजिस्ट्रेट को दें, वह जैसा उचित समझें वैसा निर्णय दें। प्रश्न यह उठाया गया कि क्या स्थानीय सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर मजिस्ट्रेट को यह अधिकार है कि वह स्वयं निर्णय कर सके कि किस नाटक को प्रदर्शन की अनुमति दी जाए किसे नहीं। इस संबंध में रजिस्ट्रार का स्पष्ट मत था कि अनुच्छेद 3 कतई स्थानीय सरकार को यह शक्ति नहीं देता कि वह अपनी उक्त विषयक निर्णय शक्ति मजिस्ट्रेट को प्रदान कर दे। संयुक्त प्रांत के विधि सलाहकार का भी यही मानना था। उसके अनुसार मजिस्ट्रेट केवल स्थानीय सरकार के निर्णय को कार्यान्वित करेगा।[42]

इस प्रश्न को हल करने के लिए संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव, जे. डब्लू. हॉस ने वुडमेन के 6 मई, 1910 के पत्र का संदर्भ लेते हुए 10 जून 1910 को एक पत्र द्वारा भारत में ब्रिटिश सरकार से पूछा कि आखिर सही व्याख्या क्या है?[25]

इस पत्र का उत्तर देते हुए गृह विभाग, भारत में ब्रिटिश सरकार के कार्यवाहक सचिव, ए. अर्ल ने कहा :

> ''भारत सरकार संयुक्त प्रांत के विधि सलाहकार की व्याख्या से सहमत है। मैं आपका ध्यान अनुच्छेद 7 की ओर दिलाना

24. रा.अ.ल. वही, पृ0 1.
25. रा.अ.ल. वही, पृ0 7.

> चाहता हूं जो स्थानीय सरकार किसी नाटकीय प्रदर्शन की प्रकृति की जांच के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति का अधिकार देता है, जिससे स्थानीय सरकार नाटक के बारे में अपना एक विचार बना सके। इस प्रकार की जांच का मूल मन्तव्य अधिकतर प्रदर्शनों को अनुमोदन तक रोके रहना है। इसके साथ ही, मैं आपका ध्यान इस अधिनियम के अनुच्छेद 10 की ओर दिलाना चाहता हूं जिसके अनुसार स्थानीय सरकार द्वारा इंगित एवं गवर्नर जनरल द्वारा अनुमोदित क्षेत्र में, स्थानीय सरकार को नियंत्रण के लिए अत्यधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। मैं कहना चाहता हूं कि भारत सरकार ऐसे मामलों में जिसे लेफ्टीनेंट गवर्नर ठीक समझें, अनुमति के लिये तैयार है।''[26]

सरकार के मंतव्य को समझते हुए संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव, जे.डब्लू. हॉस ने 26 जुलाई, 1910 को गोपनीय परिपत्र द्वारा संयुक्त प्रांत के सभी संभागों के कमिश्नर एवं सभी जिला अधिकारियों को उक्त पत्रों का संदर्भ देते हुए निर्देशित किया कि थिएटर कम्पनी एवं तथाकथित जात्रा पार्टियों द्वारा किसी भी राजद्रोहपूर्ण प्रदर्शन से सम्बन्धित मामले तुरंत सरकार को सूचित किये जाएँ।[27]

अभिव्यक्ति की विभिन्न विधाओं पर सरकार के ऐसे दमनकारी प्रयासों का असर दिखने लगा था। 1911 में प्रकाशनों की संख्या घट कर 1910 की 2,145 से 1,697 हो गई। यह संख्या पिछले न्यूनतम प्रकाशन संख्या वर्ष 1906 से भी कम थी।[28] संयुक्त प्रांत के अखबारों में आए दिन किसी न किसी प्रेस या समाचार पत्रों के विरूद्ध जुर्माने या जब्ती अथवा इन कारणों से प्रेस और पत्रों के बंद होने की खबरों को पढ़ा जा सकता था। संयुक्त प्रांत के लेखकों और प्रकाशकों में अभियोग एवं दमन का भय किस स्तर तक था, इसका पता *सरस्वती* पत्रिका के संपादक, महावीर प्रसाद द्विवेदी के उन पत्रों से चलता है जो उन्होंने संयुक्त प्रांत के लेफ्टीनेंट गवर्नर एवं भारत के गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग

26. रा.अ.ल. वही।
27. रा.अ.ल. वही, पृ0 9.
28. रा.अ.ल. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या 282, पृ0 5.

को लिखे थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जॉन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक *एस्से ऑन लिबर्टी* का दो खण्डों में हिन्दी अनुवाद किया, जिसका द्वितीय खण्ड वे संयुक्त प्रांत से प्रकाशित करना चाहते थे। किन्तु देश और संयुक्त प्रांत में मुद्रित साहित्य पर जिस प्रकार का दमन चक्र चल रहा था, उसे देखते हुए बिना अग्रिम सुरक्षा की व्यवस्था किए इस कृति को प्रकाशित करना उनके लिए समस्या का कारण बन सकता था। अतः उन्होंने इस संबंध में संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर से अनुमति चाही कि वह पुस्तक पर 'सरकार से प्रकाशन हेतु अनुमति प्राप्त' मुद्रित कर सके। संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव, जे. डब्लू. हॉस, ने महावीर प्रसाद द्विवेदी के द्वारा मिल की *एस्से ऑन लिबर्टी* के हिन्दी अनुवाद के द्वितीय खण्ड को यह कहते हुए प्रकाशन की अनुमति देने से इनकार कर दिया कि उन्होंने इस अनुदित कृति में अपनी तरफ से कई पृष्ठ जोड़े हैं जिन पर आपत्ति है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हार नहीं मानी और 3 अप्रैल, 1911 को भारत के गर्वनर जनरल लार्ड हार्डिंग को एक पत्र लिखकर अपील की इस पर फिर एक बार भारत में ब्रिटिश सरकार के गृह विभाग के सचिव को प्रथम खण्ड के प्रकाशन का हवाला देते हुए बताया गया :

> महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा मिल के निबन्ध में प्रथम खण्ड के प्रकाशन के लिए उस पत्रिका का चुनाव, जिसमें स्वराज्य, ब्रिटिश शासन के अधीन भारत की दुर्दशा, तथा अन्य ऐसे लेख छपते हैं, जो उनके मुख्य मकसद को बताने के लिए पर्याप्त है। इस सरकार ने पुस्तक के परीक्षण के पश्चात पाया कि इसके कुछ अनुदित अंश और वे अंश जो लेखक ने अपनी तरफ से जोड़े हैं, उन पर गहरी आपत्ति है। उदाहरण के लिये पृष्ठ 3 में आमुख के यह वाक्यांश अनुवादक का रवैया बताने के लिये पर्याप्त है। वह लिखता है :
>
> '' जॉन स्टुअर्ट मिल एक बार संसद के सदस्य चुने गए, किन्तु दोबारा लौट कर कभी नहीं आ सके क्योंकि चुनावों में वे मि. ब्रैडला के साथ थे जो भारत के शुभ चिंतक हैं...''।
>
> इसी प्रकार अध्याय 2 पृष्ठ 31, पंक्ति 1 में अनुवादक लिखता है कि यह सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं कि ''सरकार

की अनुचित, दमनकारी और भ्रष्ट नीतियों से बचने के लिए 'प्रेस की स्वतंत्रता, बिल्कुल ही जरूरी है''।
पृष्ठ 33 की पंक्ति 8 से 10 में कहा गया है, ''विचार एक अमूल्य निधि है, इसे दमित करना या लोगों को वैचारिक आदान प्रदान करने से रोकना, मानव से उसका सब कुछ छीन लेने के बराबर है''।[29]

भारत में ब्रिटिश सरकार के उप–सचिव, एम.एस.डी. बटलर ने 3 जून, 1911 को संयुक्त प्रांत सरकार को एक पत्र लिखते हुए निर्देशित किया कि अपीलकर्ता को यह बता दिया जाए कि किसी पुस्तक के प्रकाशन के लिये सरकार की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। इसका सीधा अर्थ यह था कि लेखक इस पुस्तक को अपने जोखिम पर प्रकशित कर सकता था। प्रकाशन के बाद प्रशासन, कानूनन इस पर अभियोग का निर्णय लेने के लिये स्वतंत्र होता।[30] प्रेस अधिनियम 1910 के अधीन न केवल ऐसी पुस्तक मुद्रित करने वाले प्रेस की जमानत जब्त हो सकती थी बल्कि प्रेस तक जब्त हो सकता था। ऐसे में कई बार प्रेसों के स्वामियों को जमानत राशि एवं अभियोग के भय से प्रेसों को स्वयं ही बन्द करने अथवा बेचने का निर्णय लेना पड़ता। कुछ इसी प्रकार की घटना लखनऊ से प्रकाशित होने वाले पत्र *मुस्लिम गजट* के साथ हुई। *मुस्लिम गज़ट* ने अगस्त 1912 में कई ऐसे लेख प्रकाशित किए जो प्रशासन को आपत्तिजनक लगे। 7 अगस्त, 1912 के अंक में *मुस्लिम गज़ट* ने लिखा :

''हमें विश्वास है कि वह दिन जरूर आएगा जब इस देश में 'स्वशासन' स्थापित होगा। मुसलमानों को हुकूमत में अपने स्थान के लिए तैयार रहना चाहिए। इसके लिये आवश्यक है कि उनके मध्य राजनीति के स्वाद का प्रसार हो तथा उनके अंदर राष्ट्रीयता की भावना का संचार हो''। एक दूसरे लेख में लिखा गया कि ''हिन्दुस्तान सदैव गुलाम नहीं रहेगा, जल्दी ही डच एवं फ्रेंच (द. अफ्रीका और कनाडा) की तरह यहां भी स्वशासन होगा।''[31]

29. रा.अ.ल. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 198.
30. रा.अ.ल. वही।
31. रा.अ.ल. सामान्य प्रकाशन विभाग, पत्रावली संख्या, 195.

कुछ ही समय बाद *मुस्लिम गज़ट* में एक और लेख छपा जिसमें कहा गया कि, "बाल्कन युद्ध ईसाइयों के द्वारा इस्लाम पर आक्रमण है''। पत्र के मालिक मीर जान को समस्या का एहसास था। इसलिए उन्होंने इन लेखों की सारी जिम्मेदारी संपादक वहीउद्दीन सलीम पर डालते हुए उसे संपादक पद से हटा दिया और प्रशासन को खेद पत्र लिखकर अगले अंको में लेखों के लिए क्षमा मांगने का विश्वास दिलाया। किन्तु प्रशासन ने न केवल *मुस्लिम गज़ट* से प्रेस अधिनियम 1910 के अनुच्छेद 3 (I) के अंतर्गत 500 रूपये की जमानत राशि ली बल्कि मुफीद–ई–एन प्रेस जिसमें *मुस्लिम गज़ट* छपता था और उसने अपना नाम बदल कर मुस्लिम प्रेस कर लिया था, उससे भी 500 रूपये की जमानत मांगी गई। संपादक मीर जान ने *मुस्लिम गज़ट* को एक नए प्रेस, *गुलशन इब्राहिम प्रेस* से निकालने का प्रयास किया। प्रशासन ने इसे भी कारण बताओ नोटिस जारी कर के पूछा कि सरकार क्यों न उसके विरूद्ध प्रेस अधिनियम 1910 के अंतर्गत कार्रवाई करे?[32] जब मीर जान ने पाया कि वे *गुलशन इब्राहिम प्रेस* में भी *मुस्लिम गजट* नहीं छपवा सकते तो उन्होंने उसे अपने प्रेस में छापने का विचार किया। किन्तु यह भी नहीं हो पाया। मीर जान ने उसे *असई प्रेस* से निकालने की कोशिश की। मीर जान ने पाया कि प्रशासन न केवल असई प्रेस पर भी कार्रवाई का विचार कर रहा है बल्कि खुद उन पर भी अभियोग का खतरा मंडरा रहा है। प्रशासन ने *असई प्रेस* से 1000 रूपये जमानत राशि मांगने का निर्णय ले लिया था। मीर जान ने खतरे को भांपते हुए अंततः *मुस्लिम गज़ट* को 1500 रूपये में बरेली के अब्दुल वदूद को बेचने का निर्णय ले लिया।[33]

1911 के बाद से वैश्विक घटनाओं, विशेषकर इटली का त्रिपोली पर आक्रमण, मोरक्को समस्या, 1912–13 में बाल्कन युद्धों के कारण भारत में बृहत इस्लामी विचारधारा का काफी विकास हुआ था। प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन द्वारा तुर्की के विरोध ने भारतीय मुसलमानों को हैरान कर दिया था। मुसलमान जो अब तक ब्रिटिश सरकार को अपना हितैषी मानते थे, अब उसकी दृष्टि में वह मक्का और मदीने पर आक्रमण करने

32. रा.अ.ल. वही।
33. रा.अ.ल. वही।

वाली शक्ति थी। इस तरह ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन को कई मोर्चों पर लड़ना था। एक तरफ तो प्रथम विश्व युद्ध में उसे भारतीयों के सक्रिय सहयोग की आवश्यकता थी दूसरी तरफ एकाएक खड़ा हो गया यह नया विपक्ष उसके लिए बड़ी समस्या का कारण बन सकता था। यह समस्या और भी बड़ी हो सकती थी यदि यह नया विपक्ष राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बन जाता। इन समस्याओं से निपटने के लिए सरकार ने अभियोगों की संख्या को बढ़ाया, किन्तु इस बार उसके निशाने पर सीधे–सीधे मुखर अभिव्यक्ति प्रकट करने वाले मुस्लिम प्रेस थे। भारत सरकार ने 'अल जेहाद' जैसे ज्वलनशील और उकसाने वाले शीर्षकों वाले पर्चों पर प्रतिबंध के लिए 'प्रेस एण्ड सी कस्टम्स एक्ट 1914' पारित किया। साथ ही जर्मन और तुर्की समाचार पत्र और पर्चे जो भारत में आ चुके थे, उनकी जब्ती के लिए आदेश जारी किये गये। अगस्त 1914 में *नेवेल एण्ड मिलिटरी न्यूज (इमरजेंसी) ऑर्डिनेन्स* पारित किया गया, जिसने एक आभासी सैन्य अभिवेचन जैसा वातावरण बना दिया था। सरकार के विरूद्ध राजद्रोही गतिविधियों को बढ़ावा देने वाली गतिविधियों को रोकने के लिए 1915 में *डिफेंस ऑफ इंडिया एक्ट* लाया गया।[34] किन्तु इन सब प्रयासों के बावजूद, यह सत्य है कि प्रथम विश्व युद्ध के समय (1914–1918) के प्रशासनिक पत्राचारों के अनुसार भारत की ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार, लगातार भारत के बाहर और भीतर, दोनों ओर से, राजद्रोही प्रकृति के मुद्रित साहित्य से उत्पन्न खतरों की आशंका से ग्रस्त रही थी।

26 जून, 1915 के अंक में इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाले पत्र *अभ्युदय* में प्रकाशित, युद्ध संबंधी एक समाचार के कारण उसके संरक्षक पंडित मदन मोहन मालवीय से 2500 रुपये की जमानत मांग ली गई।[35] ''फ्रैंच काले सैनिक और ब्रिटिश काले सैनिक में भेद'' शीर्षक से छपी इस खबर में गोल्ड कोस्ट के एक समाचार पत्र के एक अंश को प्रकाशित किया गया था।[36]

34. कीर्ति नारायण, पृ0 28, 1998.
35. रा.अ.ल. सामान्य प्रकाशन विभाग, पत्रावली संख्या, 473 पृ0 118.
36. रा.अ.ल. सामान्य प्रकाशन विभाग, पत्रावली संख्या, 473, पृ0 117.

ज्ञातव्य है कि इस लेख के प्रकाशन के समय पत्र का संपादन पंडित मदनमोहन मालवीय के भतीजे कृष्ण कांत मालवीय कर रहे थे। किन्तु प्रशासन द्वारा जिम्मेदारी संपादक पर न डालकर पत्र के संरक्षक और संस्थापक पंडित मदन मोहन मालवीय पर डालते हुए उनसे 2500 रूपये की जमानत मांगी गई।[37] पंडित मदन मोहन मालवीय ने इसका कड़ा विरोध किया। 5 अगस्त, 1915 को संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव को पत्र लिखकर कहा, ''स्थानीय सरकार द्वारा मुझसे बिना किसी स्पष्टीकरण मांगे इस प्रकार जमानत राशि जमा करने के लिए कहना अत्यन्त अन्यायपूर्ण है, इसलिए मैं इसका अनुपालन ठीक नहीं समझता हूँ। और चूंकि प्रेस अधिनियम, स्थानीय सरकार के निर्णय के विरुद्ध मुझे किसी प्रकार उपचार नहीं देता है, मैं, मेरे लिये खुले अंतिम उपाय को अपनाने के लिए मजबूर हूँ कि मैं प्रेस को बन्द कर दूँ और जितनी जल्दी हो सके इसे बेच दूँ। मैं जिलाधिकारी को सूचना भेज रहा हूँ कि *अभ्युदय* अगले मंगलवार से बन्द हो रहा है।''[38]

पंडित मदन मोहन मालवीय के विरोध और *अभ्युदय* के बंद होने की खबर को देश के समाचार पत्रों ने प्रमुखता से छापा। सरकार ऐसे समय में जब युद्ध चल रहा हो किसी प्रकार की अशांति नहीं चाहती थी। अन्ततः स्थानीय सरकार ने अपनी गलती मानते हुए कि जमानत राशि को संपादक से न मांग कर संस्थापक से मांगा गया; जमानत से संबंधित निर्देश वापस ले लिए। 17 सितम्बर, 1915 को अपनी यह गलती स्वीकार करते हुए मुख्य सचिव आर. बर्न ने इलाहाबाद संभाग के कमिश्नर फेरर्ड को लिखा कि इस स्थिति में अब केवल यह ही हो सकता है कि संपादक पर मुकदमा चलाया जाए। किन्तु अभी तक इसमें प्रमाण नहीं प्राप्त हुए हैं कि यह लेख उसी ने लिखा है, इसके लिए उसके घर और कार्यालय की तलाशी लेनी होगी। किन्तु इससे कहीं जमानत मांगने से भी बड़ा कांड न खड़ा हो जाए।[39] बर्न के इस पत्र से साफ पता चलता है कि सरकार प्रथम विश्वयुद्ध जनित परिस्थितियों के कितने दबाव में थी।

37. रा.अ.ल. वही, पृ0 118.
38. रा.अ.ल. वही, पृ0 85.
39. रा.अ.ल. वही, पृ0 137.

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में, भारत में चलचित्रों का प्रचलन अपने शुरुआती दौर में था। आंदोलनकारी अपने विचारों के प्रसार के लिए इस प्रविधि का भी प्रयोग कर सकते थे। इस समस्या के निवारण के उपाय खोजने हेतु 13 फरवरी, 1915 को भारत में ब्रिटिश सरकार के मुख्य सचिव एच. व्हीलर ने संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव को पत्र लिखकर इस संबंध में अपना विचार देने का आग्रह किया और कुछ उदाहरण दिये। उसमें से एक थी *द रिलीफ ऑफ लखनऊ*। इसका प्रदर्शन बम्बई प्रेसीडेन्सी में हो चुका था। सरकार ऐसा विश्वास करती थी कि इसे पंजाब और उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत में भी दिखाया गया है। इस चलचित्र का विषय 1857 के विद्रोह से संबंधित था, जो विद्रोह के समय अंग्रेज महिलाओं, बच्चों के कत्ले आम से लेकर विद्रोहियों की हार पर खत्म होती थी।[40]

संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव ने संयुक्त प्रांत के सभी कमिश्नरों तथा इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस को इस संबंध में अपना विचार देने का आग्रह किया। केवल मेसर्स को छोड़कर बाकी सभी कमिश्नरों, जैसे लॉवेट, सॉन्डर्स, और फेरार्ड व इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस आदि ने पूर्व अभिवेचन व्यवस्था की वकालत की। अधिकारियों ने *ड्रामेटिक परफार्मेंस एक्ट 1876* की प्रस्तावना और नाटकीय प्रदर्शन की परिभाषा को और विस्तृत करने का सुझाव दिया जिससे चलचित्रों को इसमें जोड़ा जा सके। अधिकारियों की दृष्टि में प्रतिबंध का अधिकार जिला अधिकारियों के हाथ में होना चाहिए था इसलिए इस एक्ट में, 'स्थानीय सरकार को', जिला मैजिस्ट्रेट से प्रतिस्थापित करना चाहिए। इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस का सुझाव था कि सभी प्रदर्शनों के लिए हर जिले में लाइसेंस लेना अनिवार्य करना चाहिए तथा इसके लिए लाइसेंस प्राधिकारी सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस को होना चाहिए। होप सिम्पसन के अनुसार एक्ट के उल्लंघन पर अधिकतम दो वर्ष के कारावास की सजा का प्रावधान होना चाहिए था।[41]

संयुक्त प्रांत के अधिकारियों द्वारा दिए गए कठोर सुझावों से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे अधिकारी जो सामान्य जनता के

40. रा.अ.ल. सामान्य प्रकाशन विभाग, पत्रावली संख्या, 152, पृ0 9.
41. रा.अ.ल. वही, पृ0 2–3.

सीधे सम्पर्क और परिस्थितियों के साथ मुकाबले में सीधे मोर्चे पर थे वे अपने हाथ में ऐसी शक्तियों की चाह रखते थे जिससे किसी भी समस्या को सिर उठाते ही उसे कुचल दिया जाए। अधिकारियों के पत्रों में कई बार यह भावना प्रगट की जाती थी कि अभियोगों के लिए स्वीकृति लेने और अभियोग चलाने की प्रक्रिया में काफी देरी होने के कारण आरोपी को न केवल प्रसिद्धि मिलती बल्कि सजाओं का व्यापक असर कमजोर हो जाता था। इसलिए उच्च स्तर पर शासन ने इस समस्या को समझते हुए प्रेस अधिनियम 1910 में 'स्थानीय सरकार' की शक्तियों में वृद्धि की, किन्तु *कमिश्नर* स्तर के अधिकारियों की दृष्टि में शक्ति का और विकेन्द्रीकरण होना चाहिए था, कम–से–कम जिला *मजिस्ट्रेट* और *सुपरिनटेंडेंट ऑफ पुलिस* की शक्तियों में और वृद्धि की मांग की गई।

1918 में 'इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल' के एक सदस्य जी. एस. खपर्डे को पता चला कि पंजाब सरकार ने राज सहायता एवं विज्ञापनों को न देने के लिए समाचार पत्रों की एक 'काली सूची' तैयार की है। इस संबंध में और अधिक जानकारी के लिए उन्होंने 'इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल' में निम्नलिखित तीन प्रश्न पूछे–

(1) क्या पंजाब सरकार ने सरकारी सहायता या विज्ञापनों हेतु समाचार पत्रों की कोई 'काली सूची' बनाई है?
(2) क्या ऐसी सूची किसी अन्य स्थाई सरकारों द्वारा भी बनाई जाती है?
(3) क्या समाचार पत्रों के लिए 'काली सूची' की व्यवस्था ब्रिटिश साम्राज्य में और कहीं भी अपनायी जाती है?[42]

पहले दोनों प्रश्नों का उत्तर देते हुए विलियम बिन्सेन्ट ने बताया :

''समय–समय पर बम्बई, संयुक्त प्रांत, पंजाब की सरकारें और उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रांत एवं दिल्ली के चीफ कमिश्नर ऐसे समाचार पत्रों की सूची बनाते हैं, जिन्हें राज सहायता एवं सरकारी विज्ञापन नहीं दिया

42. रा.अ.ल. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 449, पृ0 31.

जाना होता है।''तीसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने इस संबंध में अनभिज्ञता प्रकट कर दी।[43]

इस विषय में पंजाब सरकार तथा संयुक्त प्रांत सरकार के मध्य भी पत्राचार हुआ, जिससे पता चलता है कि संयुक्त प्रांत ने 1915 से ही ऐसी सूची का विधान कर रखा था, और इस समय तक 'काली सूची' में संयुक्त प्रांत से प्रकाशित होने वाले निम्नलिखित छः पत्रों का नाम था।

1– *प्रताप* –कानपुर
2– *अवध पंच*–लखनऊ
3– *एडवोकेट*–लखनऊ
4– *नई रोशनी* –इलाहाबाद
5– *अवधवासी*–लखनऊ
6– *उत्साह*–उरई[44]

समाचार पत्रों को 'काली सूची' में डाले जाने का सीधा अर्थ था कि सरकार उनमें प्रकाशित होने वाले लेखों को अपने हित में नहीं समझती थी।

प्रेस अधिनियम 1910 के अंतर्गत कार्यवाहियों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही थी, अधिनियम के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को काफी अधिक शक्तियाँ दी गई थीं। यहां तक कि मजिस्ट्रेट कई बार प्रेस अधिनियम के अंतर्गत की गई कार्यवाहियों की रिपोर्ट सरकार को नहीं भेज रहे थे। शासन ने इसे संज्ञान में लेते हुए 23 जून, 1919 को संयुक्त प्रांत के सभी कमिश्नरों को पत्र लिखते हुए इस ओर ध्यान आकर्षित किया और सभी जिला मजिस्ट्रेटों को आदेश दिया कि ''प्रेस अधिनियम 1910 के अंतर्गत की गई कार्रवाईयों की जानकारी का पूरा ब्योरा तैयार रखें और कार्रवाई के तुरन्त बाद पूरे प्रकरण और मैजिस्ट्रेट के निर्णय से सरकार को अवगत कराया जाए''।

43. रा.अ.ल. वही, पृ0 33.
44. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 19.

मुख्य सचिव के इस पत्र के उत्तर में कई संभागों के कमिश्नरों ने अपने क्षेत्र की रिपोर्ट भेजी। इन रिपोर्टों में कानपुर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रेषित रिपोर्ट में कानपुर से प्रकाशित होने वाले *प्रताप* और उसके संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी की रिपोर्ट भी थी। इस रिपोर्ट के अनुसार इस पत्र का झुकाव अतिवाद की ओर था। संपादक को न सिर्फ एक बार 'आयरलैण्ड के विद्रोह' पर लेख के लिये चेतावनी दी गई थी बल्कि उसे *'कुली प्रथा'* नामक एक पुस्तक प्रकाशित करने के कारण 2 नवम्बर 1916 को प्रेस अधिनियम 10 के अनुच्छेद 3 (2) के अंतर्गत 1000 रूपये की जमानत भी मांगी जा चुकी थी। इस पुस्तक को जब्त कर लिया गया था। *प्रताप* में अक्सर भारत की दुर्दशा, भारतीयों के शोषण और भारत माता के लिए बलिदान को प्रेरित करने वाली कविताएं छपती थीं। चंपारन किसान समस्या पर लेख के कारण इस पत्र को अगस्त 1917 में भी चेतावनी दी गयी थी। *प्रताप* प्रेस लगातार 'होम रूल' पर पुस्तकें निकालता रहा, जिसके कारण इसकी जमानत राशि (1000 रू.) को जब्त कर लिया गया था। इसके पिछले आचरण को देखते हुए इससे 2000 रूपये की जमानत राशि मांगने का निर्णय लिया गया था।[45] इन सबके बावजूद *प्रताप* निष्ठापूर्वक अपने कार्य में संलग्न रहा।

सितम्बर 1918 में जी.एस. खपर्डे ने विधान सभा में प्रेस एक्ट की कार्यविधि की जांच के लिए एक समिति के गठन का प्रस्ताव रखा जिसका समर्थन लगभग सभी गैर सरकारी सदस्यों ने किया, किन्तु सरकार ने इसका विरोध करके सरकारी सदस्यों की सहायता से पारित नहीं होने दिया।[46] हालांकि राज्य सचिव के स्तर पर कहीं न कहीं यह प्रकरण विचाराधीन था, क्योंकि 15 जनवरी 1920 को राज्य सचिव मॉटेग्यु ने भारत में ब्रिटिश सरकार के गवर्नर जनरल चेम्सफोर्ड को इस प्रकरण पर पत्र लिखते हुए पूछा था कि ''क्या अब समय आ गया है कि प्रेस पर से मजिस्ट्रट और स्थानीय सरकार के नियंत्रण कम किये जाए और यह शक्तियां, सामान्य अदालतों में प्रतिस्थापित की जाएँ?[47] इस पत्र को संज्ञान में लेते हुए भारत में ब्रिटिश सरकार के राज्य सचिव

45. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 274, पृ0 337.
46. के.बी. मेनन, पृ0 12–13, 1937.
47. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 266, पृ0 1.

एच. मैकफियर्सन ने 1 जुलाई, 1920 को संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव को पत्र लिखकर इस विषय पर संयुक्त प्रांत सरकार के विचार आमंत्रित किए तथा अपनी तरफ से चार मार्ग सुझाए :

1– प्रेस अधिनियम (1910 का II) में कोई परिवर्तन न किया जाए और पूरी उदारता के साथ इसे ऐसे ही उपयोग में लाया जाए।

2– दूसरा रास्ता यह हो सकता है, जैसा 1917 में स्थानीय सरकारों के साथ संवाद में निकल कर आया था कि इस अधिनियम के केवल अनुच्छेद 4 व 17 में आंशिक परिवर्तन किया जाए। इससे अधिनियम में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं आएगा। किन्तु भारत में ब्रिटिश सरकार यह विचार करती है कि भारत के वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य और प्रेस अधिनियम में बड़े परिवर्तन की मांग को देखते हुए यह भारतीय जनता को संतुष्ट कर पाएगा इसमें संदेह है।

3– तीसरे सुझाव को राज्य सचिव मॉटेग्यु द्वारा 15 जनवरी, 1920 के पत्र में विस्तार से व्याख्यायित किया गया था। इसके अनुसार प्राथमिक स्तर पर नियंत्रण का कार्य कार्यपालिका देखेगी जबकि दण्डात्मक उपाय न्यायपालिका के जिम्मे रहेंगे। शुरूआती तौर पर जमानत राशि तय करने और लेने का कार्य कार्यपालिका करेगी, वहीं जमानतों की जब्ती इत्यादि का निर्णय सामान्य अदालतें करेंगी।

4– जबकि, उदारवादियों द्वारा यह सुझाव रखा गया है कि प्रारंभिक जमानत राशि और उन्हें जब्त करने संबंधी दोनों अधिकार सामान्य अदालतों को होने चाहिए।[48]

यह मामला लगभग आठ महीनों तक सिर्फ प्रशासनिक पत्राचार का विषय बना रहा। अंततः 22 फरवरी, 1921 को सरकारी सदस्य एस. पी. ओ. डॉनेल के प्रस्ताव पर, भारतीय प्रेस अधिनियम 1910, समाचार पत्र (अपराध प्रोत्साहन) अधिनियम 1908, तथा प्रेस एवं पुस्तक पंजीकरण अधिनियम 1867, पर विचार करने के लिए एक समिति की घोषणा की

48. रा.अ.ल. वही, पृ0 5–6.

गई। 21 मार्च, 1921 को अस्तित्व में आई, इस समिति को बताना था कि इन अधिनियमों को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाए अथवा संशोधन किया जाए या इनमें और वृद्धि की जाए।[49] इस समिति का अध्यक्ष, वॉयसराय के कार्यकारी परिषद में कानूनी सदस्य तेज बहादुर सप्रू को बनाया गया। इस समिति ने भारत की राजनैतिक स्थिति, समिति के समक्ष उपस्थित हुए गवाहों, स्थानीय सरकारों के विचारों का विश्लेषण करके निम्नलिखित अनुशंसा दी –

1– प्रेस अधिनियम 1910 को समाप्त किया जाना चाहिए।

2– समाचार पत्र (अपराध प्रोत्साहन) अधिनियम को समाप्त किया जाना चाहिए।

3– प्रेस एवं पुस्तक पंजीकरण अधिनियम, द सी कस्टम्स एक्ट और पोस्ट ऑफिस अधिनियम में, जहां आवश्यक हो, संशोधन किया जाना चाहिए।[50]

सरकार ने इस समिति की अनुशंसाओं को स्वीकार करते हुए इन्हें 1922 के अधिनियम XIV के रूप में प्रस्तुत किया, जिसे 29 मार्च, 1922 को सपरिषद गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त हुई। इस अधिनियम ने भारतीय प्रेस अधिनियम 1910 एवं समाचार पत्र (अपराध प्रोत्साहन) अधिनियम, 1908 को समाप्त कर दिया।[51]

1922 से 1926 के बीच, भारतीय राजनीति की तीन प्रमुख प्रवृत्तियां, तत्कालीन राजनीति एवं प्रेस के प्रति ब्रिटिश औपनिवेशिक रणनीति को समझने में सहायक हो सकती है। प्रथम, असहयोग आंदोलन की वापसी और गांधीजी की गिरफ्तारी ने कांग्रेस संगठन को लगभग पंगु कर दिया था। कांग्रेस का वह धड़ा जो गांधीजी के विचारों और कार्यक्रमों में अब भी विश्वास व्यक्त कर रहा था वह उनके साथ सृजनात्मक कार्यक्रमों में लग गया, वहीं कांग्रेस का दूसरा धड़ा जिसका नेतृत्व सी.आर.दास और मोतीलाल नेहरू इत्यादि कर रहे थे, वे विधान सभाओं में शामिल

49. के.बी.मेनन, पृ0 13, 1937.

50. जे.नटराजन और अनुवादक आर. चेतनक्रांति, पृ0 218–219, 2002.

51. के.बी. मेनन, पृ0 15–16, 1937.

होने का इरादा रखते थे। कांग्रेस के दोनों धड़ों की कार्य करने की दिशा का सीधा अर्थ यह था कि अपने तमाम उत्पीड़नों के बावजूद ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार को पहले की तरह किसी बड़े विरोध का सामना नहीं करना था। दूसरी तरफ चौरी–चौरा कांड के बाद असहयोग आंदोलन की वापसी से गांधीजी की नीतियों के प्रति युवाओं में बड़े पैमाने पर मोहभंग हुआ जिससे बंगाल, पंजाब और संयुक्त प्रांत में क्रांतिकारी संस्थाओं के उदय ने स्थानीय सरकारों के लिए नई चुनौतियाँ प्रस्तुत कर दी थी। तीसरी प्रवृत्ति के रूप में दो अलग–अलग राजनैतिक गतिविधियों को इंगित किया जा सकता है। जिसमें से प्रथम, भारत में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना एवं एम.एन. राय जैसे कम्युनिस्ट नेताओं के नेतृत्व में कांग्रेस, मजदूर संघों, एवं कृषक संगठनों में प्रवेश करने का प्रयास था। हालांकि दूसरी समस्या इससे भी बड़ी थी, वह थी साम्प्रदायिक हिंसा। प्रथम विश्व युद्ध के समय साम्प्रदायिक विवाद का जो पुनरुत्थान हुआ था, वह बाद के काल में भारतीय राजनीति का स्थाई अंग बन गया। वस्तुतः विभिन्न संप्रदायों के मध्य यह लड़ाई अनेक स्तरों पर लड़ी जा रही थी। साम्प्रदायिक गुटों ने एक दूसरे के विरूद्ध अनेक पर्चे और लेख प्रकाशित किए। दर्जनों साम्प्रदायिक प्रेसों एवं प्रकाशन संस्थाओं ने एक दूसरे के इतिहास और धार्मिक पुस्तकों में से विवादित अंशो को छांट कर प्रकाशित किया। उदाहरण के तौर पर 1923 में मौलवी अब्दुल हक ने एक मुस्लिम समाचार पत्र, *पैगाम–ई–सुलह* में लिखा कि हिन्दू अक्सर मुसलमानों के विवाह का मजाक उड़ाते हैं, तब वे अपने देवताओं द्वारा किए जाने वाले अनाचारों को आसानी से भूल जाते हैं। वहीं, एक आर्य समाजी उपदेशक, पण्डित कालीचरण शर्मा ने अपनी पुस्तक *'विचित्र जीवन'* में पैगम्बर मुहम्मद के प्रारंभिक जीवन और इस्लाम के उद्भव पर अपने विचार देते हुए मुहम्मद के जीवन एवं कथित अनैतिकता पर विस्तार से लिखा।[52]

वस्तुतः भारतीय राजनीति की इन तीनों प्रवृत्तियों के प्रचारकों के लिए अपने विचारों के प्रसार हेतु प्रेस और समाचार पत्र बड़े माध्यम थे। औपनिवेशिक प्रशासन के समक्ष चुनौतियां बड़ी थी, कारण कि एक तरफ तो उन्हें अभी–अभी समाचार पत्र (अपराध प्रोत्साहन)

52. एन. गेराल्ड बैरियर, पृ0 91–93, 1976.

अधिनियम 1908, तथा प्रेस अधिनियम 1910 जैसे कानूनों को निरस्त करना पड़ा था। दूसरी तरफ, महात्मा गांधी के समर्थकों, कम्युनिस्टों और क्रांतिकारियों द्वारा प्रकाशित साहित्य से निपटना था। इसके लिए औपनिवेशिक प्रशासन ने जिस अधिनियम (1922 का XIV) द्वारा उक्त दोनों कानूनों को निरस्त किया उसी में ऐसे प्रकाशनों पर रोक लिए *क्रिमनल प्रोसीजर कोड* में धारा 99 ए का प्रावधान किया। आगे के कई वर्षों तक पुस्तकों एवं प्रकाशनों पर प्रतिबंध के लिये दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 99 ए का बार–बार प्रयोग होता रहा। इसके अनुसार, कोई भी ऐसा समाचार पत्र या पुस्तक जो जान बूझकर और शरारतपूर्ण इरादे से ऐसे वर्गों के बीच धार्मिक आक्रोश भड़कायेगी ...अथवा सरकार जैसा समय-समय घोषित कर अधिसूचित करेगी... उनका उल्लंघन करता है, तब उसे जब्त किया जा सकता था, तथा ऐसे साहित्य की तलाशी के लिए वारंट जारी किया जा सकता था।[53] मार्च 1923 में ही नाटकों के प्रदर्शन और उन पर प्रतिबंध से जुड़ा प्रश्न एक बार पुनः प्रकाश में आया। कानपुर के कलेक्टर, जे.एम. क्ले ने इलाहबाद संभाग के कमिश्नर, ए.डब्लू. पिम को सूचना दी कि :

> ''नेशनल कान्यकुब्ज स्कूल के अध्यापक एवं विद्यार्थी, चरयारी बाग में, 'तपस्वी मोहन' नामक नाटक का प्रदर्शन एक से अधिक बार सफलतापूर्वक कर चुके हैं। हालांकि नाटक की विषयवस्तु सर्वथा काल्पनिक है किन्तु यह पूरी तरह राजनैतिक है तथा यह भारत की वर्तमान परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है। पूरा नाटक यह सुझाता है कि देश की वर्तमान समस्या का हल केवल नागरिक अवज्ञा से ही निकल सकता है''।[54]

अपने एक अन्य पत्र में क्ले स्पष्ट रूप से 'तपस्वी मोहन' को ड्रामेटिक परफारमेंस एक्ट 1876 (1876 का अधिनियम 21) के अनुच्छेद 3 (बी) के अंतर्गत स्थानीय सरकार द्वारा प्रतिबंधित करने की संस्तुति करता है।[55] नाटक 'तपस्वी मोहन' में ऐतिहासिक और समकालीन राजनैतिक पात्रों को जोड़ते हुए एक काल्पनिक संघर्ष का तानाबाना बुना गया था।

53. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 363, पृ0 2.
54. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 192 पृ0 35.
55. रा.अ.ल. वही, पृ0 9.

नेशनल कान्यकुब्ज विद्यालय (कानपुर) के एक विद्यार्थी, श्री धनीराम 'प्रेम' विशारद द्वारा संकलित, इसी विद्यालय के हैड मास्टर मुन्नीलाल अवस्थी द्वारा प्रकाशित, व बी.डी. गुप्त, कमर्शियल प्रेस, जूही, कानपुर द्वारा मुद्रित इस नाटक के विश्लेषण से समकालीन राजनैतिक परिस्थिति, समस्याएँ, समाज में गांधीजी के विचारों के पैठ का स्तर और सामान्य जन के भीतर की मानसिक उथल-पुथल का पता लगाया जा सकता है। इस नाटक में समकालीन राजाओं के चरित्र, उपाधियों के प्रति उनके मोह, दुर्जय सिंह के रूप में भारतीयों द्वारा ही भारतीयों पर अत्याचार, राय बहादुर चिन्तानाथ जैसे दोहरे चरित्र वाले अभिजात्य वर्ग, तथा आए दिन बढ़ते हुए करों के बोझ के रूप में न केवल भारत की मूल समस्या से अवगत कराया गया था, बल्कि सैनिक विद्रोह एवं असहयोग के माध्यम से इन समस्याओं का हल भी सुझाया गया था। हालांकि राजा और सेनापति को मार डालना और सेना के विद्रोह जैसे सुझाव यह दर्शाते हैं, कि सचमुच अभी तक गांधीजी के सत्याग्रह का मूल मंतव्य समाज पूरी तरह नहीं समझ सका था। दूसरी तरफ नाटक का अंत इस मायने में प्रभावित करने वाला था कि विजय के उपरांत जनता स्वराज सरकार की कमान एक अहिंसक असहयोगी मोहनदास के हाथ में सौंपती है न कि किसी राजपुत्र या सैन्य प्रमुख के हाथ में। यह दर्शाता है कि समाज में लोकतांत्रिक विचार अपनी जड़ें जमाने में कामयाब हो गये थे।

ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन की दृष्टि में समाज की यह विचारदृष्टि साम्राज्य के लिए खतरे से कम नहीं थी। 23–24 मार्च, 1923 को एक गोपनीय अर्द्धसरकारी पत्र द्वारा कानपुर के कलेक्टर जे.एम. क्ले ने इलाहाबाद संभाग के कमिश्नर को पुनः सूचना दी कि, 'तपस्वी मोहन' का प्रदर्शन करने वाली वही संस्था 'म्युनिसिपालिटी का भण्डा फोड़' नामक नाटक का प्रदर्शन कर रही थी। उसकी दृष्टि में यह नाटक भी बेहद आपत्तिजनक था।[56] इसे देखते हुए 7 अप्रैल, 1923 को संयुक्त प्रांत की सपरिषद गवर्नर जनरल ने आदेश जारी करते हुए इलाहाबाद और कानपुर के कलेक्टरों को स्थानीय सरकार की ओर से नाटक को प्रतिबंधित करने का अधिकार दे दिया।[57]

56. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 192, पृ0 43.
57. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 192, पृ0 41.

असहयोग आंदोलन के दौरान देश में अनेक लोगों ने सरकारी नौकरियां छोड़ी थीं। इनमें से कईयों के पास निश्चित रूप से सरकार की प्रशासनिक अथवा अन्य प्रकार की जानकारियां हो सकती थीं जिन्हें सरकार नहीं चाहती थी कि वह प्रेस तक पहुंचे। दूसरे चुनावों के बाद पहले से कहीं अधिक भारतीयों के विधायिका व कार्यपालिका से जुड़ने की संभावना थी जिनके पास निश्चित तौर पर सरकार और उसकी कार्यविधि से जुड़ी सूचनाएं आतीं। ध्यान देने योग्य है कि इन लोगों में से अधिकांश वे थे जो लगातार सरकार का विरोध कर रहे थे। ऐसे में ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने अपनी तमाम जानकारियों को गुप्त रखने के लिए शासकीय गुप्त बात अधिनियम 1923 पारित किया। यद्यपि यह अधिनियम प्रेस के विरूद्ध निर्देशित नहीं था किन्तु फिर भी इस अधिनियम की धारा 3 तथा धारा 5 परोक्ष रूप से प्रेस पर कठोर कार्रवाई का आधार प्रस्तुत करती थी। शासकीय गुप्त बात अधिनियम 1923 की धारा 3 वैसे तो मूल तौर पर जासूसी या गुप्तचरों से संबंधित थी किन्तु परोक्ष रूप से इस धारा में निहित किसी भी जानकारी की प्राप्ति का प्रयास अथवा प्राप्त जानकारी का प्रयोग किसी पत्रकार को 14 वर्ष तक के कारावास का भागी बना सकती थी। इस धारा के अंतर्गत मूलतः सैन्य सुरक्षा व प्रतिरक्षा जैसे विषय रखे गये थे। इस अधिनियम की दूसरी धारा 5 का विस्तार सामान्य नागरिक सेवाओं तक था। ऐसी जानकारी को प्रकाशित करना या जाहिर करना किसी भी व्यक्ति के लिये 3 वर्ष के कारावास या जुर्माना या दोनों के दण्ड का कारण बन सकता था। किसी पत्रकार द्वारा सरकार के विरूद्ध कोई तथ्य प्रकाशित करना उसके लिए खतरनाक हो सकता था वह भी तब जब इस अधिनियम में 'गुप्त बात' को परिभाषित ही नहीं किया गया था। ऐसे में यह तय करने का अधिकार, प्रशासन के पास आ गया कि कौन सी बात गुप्त है। इस अधिकार ने प्रेस, लेखकों और पत्रकारों के विरूद्ध प्रशासन को बड़ी शक्ति दे दी थी।

असहयोग आंदोलन के बाद बदली हुई परिस्थितियों में, प्रशासनिक अधिकारियों के बीच प्रेस से सूचनाओं को गोपनीय रखने तथा राजद्रोही प्रवृत्ति के प्रकाशनों पर काबू पाने की समस्या तो थी ही, दूसरी तरफ इस समय हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समुदायों की ओर से एक दूसरे के विरूद्ध पुस्तिकाएं, पर्चे और लेख प्रशासन के लिए नई चिन्ता

का विषय बने हुए थे। वस्तुतः स्वयं प्रशासनिक अधिकारी, ऐसे साम्प्रदायिक साहित्य पर क्या कार्रवाई की जाए, समझ नहीं पा रहे थे। रूहेलखण्ड संभाग के कमिश्नर ने 30–31 मई, 1924 को संयुक्त प्रांत के सचिव को लिखे अर्द्धसरकारी पत्र में इस समस्या को उठाते हुए यह प्रश्न उठाया कि हिन्दू और मुसलमानों की भावनाओं को भड़काने वाला साहित्य स्वतंत्रतापूर्वक वितरित होने दिया जाए या नही? दूसरे, इस प्रकार के प्रकाशनों पर कैसे और क्या कार्रवाई की जाए? उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि एक पुस्तिका, *''इस्लाम की टिली लिली झर्र''* के लिये दिल्ली के मुख्य आयुक्त ने जानना चाहा था कि क्या इस हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 196[58] के अंतर्गत कार्रवाई की जा सकती है? मामला सी.आई.डी. को भेजा गया, उसने उत्तर दिया कि यह मामला इस अनुच्छेद के अंतर्गत नहीं आता इसलिये पुस्तिका पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है। अगर मुसलमान इससे स्वयं को दुःखी पाते हैं तो वे इसे अभियोग बना सकते हैं, किन्तु ऐसे अभियोग से दोनों समुदाय और भी भड़क सकते हैं। सी.आई.डी. का यह उत्तर वस्तुतः राज्य के साम्प्रदायिक चरित्र को व्यक्त करता है।[59]

संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव जी.बी. लैम्बर्ट ने 4 जून, 1924 को लीगल रिमेम्बरेन्सर से इस संबंध में विधिक सलाह मांगते हुए अपनी राय रखी कि "उनके विचार में ऐसे साहित्य को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता जब तक कि पूरी तरह यह सिद्ध न हो जाए कि वह साहित्य राजद्रोही प्रकृति का है।"[60]

संयुक्त प्रांत के लीगल रिमेम्बरेन्सर ई. बेन्नेट ने इस संबंध में सुझाव देते हुए कहा कि, ''1922 के एक्ट XIV के द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता में धारा 99 ए जोड़ी गयी है जिसके द्वारा ऐसे किसी भी प्रकाशन को जिसे अनुच्छेद 124 ए के अंतर्गत दंडित किया जा सकता हो, जब्त करने तथा उसकी तलाशी का आदेश देने की शक्ति दी गई है''। लीगल

58. धारा 196–राज्य के विरूद्ध अपराधों के लिए और ऐसे अपराध करने के लिए आपराधिक षडयंत्र के लिए अभियोजन। दण्ड विधि संहिता, 2010, पृ0 100.
59. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 363, पृ0 1–2.
60. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 363, वही।

रिमेम्बरेन्सर का यह भी सुझाव था कि धारा 99 ए में संशोधन करके इसमें 153 ए को भी शामिल करना चाहिए।[61]

वास्तव में प्रशासन का प्रयास ऐसे मामलों में सीधे 124 ए के अंतर्गत अभियोग से बचने का था। क्योंकि संयुक्त प्रांत के असिस्टेंट डिप्टी इंस्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस एच.आर.रो के अनुसार पिछले कई वर्षों में यह देखा गया कि बार–बार और कम महत्वपूर्ण व्यक्तियों या संस्थाओं पर इस धारा के अंतर्गत अभियोग कोई बहुत प्रभावी नहीं हो पाया, इस कारण कम महत्वपूर्ण व्यक्तियों पर, अन्य छोटे–छोटे कानूनों का जो डर था, वह भी जाता रहा था।[62] एच.आर.रो का स्पष्ट सुझाव था कि, जिला मजिस्ट्रेटों को धारा 108 (दण्ड प्रक्रिया संहिता) का प्रयोग अपने विवेक से करने की छूट होनी चाहिए। 14 सितंबर, 1925 को सी.एल. अलेग्ज़ेन्डर द्वारा गृह सदस्य को जानकारी दी गई कि, ''मि0 रो द्वारा निर्देशित दिशा पर चलते हुए सभी जिला मजिस्ट्रेट एवं सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस को सूचित कर दिया है कि जिला मजिस्ट्रेट धारा 108 का खुल कर प्रयोग कर सकते हैं।'' साथ ही रो की इस बात को भी सही माना गया कि, धारा 108 के प्रयोग के लिए जिला मजिस्ट्रेटों को कमिश्नर की अनुमति की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। फिर भी इस बात पर शंका व्यक्त की गई कि धारा 108 के अंतर्गत अभियोग इतना सरल है जितना कि रो का कहना है। सांप्रदायिक साहित्य पर कार्रवाई को लेकर अनिश्चितता का यह वातावरण 1927 में समाप्त हुआ जब ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा भारतीय दण्ड संहिता में एक नई धारा 295 क जोड़कर किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को चोट पहुंचाने के आशय से किये गए कार्य या प्रयत्न पर दण्ड का प्रावधान किया गया। यह दण्ड तीन वर्ष की साधारण सश्रम कारावास या जुर्माना या दोनों हो सकता था।[63] यही नहीं प्रशासन द्वारा यह निश्चित कर लिया गया कि साहित्य जो 153 ए के अधीन आते थे उन्हें 99 ए (दण्ड प्रक्रिया संहिता) के अंतर्गत प्रतिबंधित किया जा सकता था।[64]

---

61. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 363, वही।
62. रा.अ.ल. वही, पृ0 4.
63. डॉ.नन्द किशोर त्रिखा, पृ0 133–144, 1986.
64. रा.अ.ल. गोपनीय अर्धसरकारी पत्र संख्या, 755 डी, 14 जून, 1927 मुख्य सचिव संयुक्त प्रांत जी.बी. लैम्बर्ट का, आर.एल.एच. क्लार्क, कमिश्नर आगरा को, होम पुलिस, पत्रावली संख्या 363, पृ0 10–11.

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 99 ए के प्रयोग द्वारा साम्प्रदायिक साहित्य के प्रतिबंध का निश्चय भले ही प्रशासन 1927 में कर पाया हो किन्तु साहित्य पर प्रतिबंध के लिये 1922 के बाद से ही इस धारा का प्रयोग बार–बार किया गया। *स्वदेश* जैसे मामलों में जिसके अपराध को धारा 124 ए के अंतर्गत माना गया, उस पर भी प्रतिबंध के लिए दण्ड प्रक्रिया की धारा 99 ए का ही प्रयोग किया गया। गोरखपुर से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र *स्वदेश* ने अपने 07 अक्टूबर, 1924 के अंक को 'विजयादशमी विशेषांक' के रूप में निकाला था। इस विशेषांक का संपादन बनारस के पण्डित बेचन शर्मा 'उग्र' ने किया था तथा समाचार पत्र के संपादक दशरथ प्रसाद द्विवेदी इस विशेषांक के प्रकाशक थे। प्रशासन ने इसमें छपे चार लेखों को विशेषतौर पर राजद्रोह पूर्ण माना जो निम्नलिखित थे।

(1) कविता–*मां* –लेखक श्रीरामनाथ लाल 'सुमन'।
(2) कविता– *विजय* – लेखक पंडित राम चरित उपाध्याय।
(3) *हमारी दशा; तुम्हारा स्वागत*–लेखक त्रिदण्डी।
(4) कविता– *भावी क्रांति* लेखक – अनूप शर्मा बी.ए.।[65]

श्रीरामनाथ लाल 'सुमन' की कविता *मां* भारत माता के चण्डिका स्वरूप का आवाहन करती है। पूरी कविता मानों पुनः ताण्डव की मांग हो।

मां! अपनी आंखों से क्यों है गूंथ रही नन्हीं बूंदे
खून छींट दे, आग जला, धधधध लपटें अम्बर छूदे
वे नृशंस बस दर्शन से ही मर जाएं बस आंखें मूंदे
अत्याचारी वधिक विदेशी छाती पर न अधिक कूदें
एक बार मां! एक बार तू नाच काम बन जायेगा।
ताण्डव की बस एक कला में रक्त पात्र भर जाएगा[66]

औपनिवेशिक प्रशासन ने उक्त लेखों को राजद्रोहपूर्ण मानते हुए आरोपी दशरथ प्रसाद द्विवेदी पर धारा 124 ए के अधीन आरोप लगाए तथा

65. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 411, 1923, पृ0 22.
66. रा.अ.ल. वही, पृ0 63.

उन्हें दो वर्ष की सश्रम कारावास तथा 50 रूपये के जुर्माने से दण्डित किया गया।[67] पंडित बेचन शर्मा 'उग्र' की गिरफ्तारी के बाद गोरखपुर की जिला मजिस्ट्रेट की अदालत में उन पर मुकदमा चला और उन्हें 9 महीने की सश्रम कारावास की सजा दी गई।[68] 7 फरवरी, 1925 को गोरखपुर स्रभाग के कमिश्नर जे.सी. स्मिथ ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 99 ए, के अधीन *स्वदेश* के 'विजयादशमी विशेषांक' की जब्ती के आदेश की संस्तुति कर दी। जिसके आधार पर मुख्य सचिव जी. बी. लैम्बर्ट के आदेश में 19 फरवरी, 1925 को अधिसूचना संख्या–762/VIII-411 द्वारा पुलिस विभाग की ओर से 'विजयादशमी विशेषांक' की प्रत्येक प्रति जब्त करने का आदेश अधिसूचित कर दिया गया।[69]

1917 की रूसी क्रांति के पश्चात् दुनिया के आंदोलनकारियों का एक बड़ा वर्ग साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हुआ था। ब्रिटेन स्वयं भी साम्यवादी गतिविधियों से लगातार सशंकित रहा था। भारत में भी ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने साम्यवादी साहित्य विशेषकर कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रकाशनों एवं समाचार पत्रों पर 22 अप्रैल, 1922 को एक अधिसूचना जारी करके (अधिसूचना संख्या –2026, वाणिज्य विभाग) सी कस्टम्स एक्ट 1878 के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत, भारत में आने अथवा आ चुके साहित्य के डाक विभाग से अंतरण पर रोक लगा दी थी। भारत सरकार व स्थानीय सरकारें, कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रत्येक प्रकाशन पर अपनी सूची संवर्धित करतीं तथा यह सूचना परस्पर साझी की जाती थी। 30 मई, 1925 एवं 18 जून, 1925 को भी भारत में ब्रिटिश सरकार के उपसचिव जे.डी.वी. हॉज द्वारा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रकाशनों एवं समाचार पत्रों की ऐसी ही एक सूची मद्रास एवं संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिवों को भेजी गई इस सूची में उल्लिखित प्रकाशनों एवं समाचार पत्रों को 'डाक एवं कस्टम विभाग' द्वारा रोक लेने के आदेश थे। समय–समय पर भारत में ब्रिटिश सरकार इस सूची में पुस्तकें जोड़ती रही।[70] किन्तु जैसे–जैसे साम्यवादी संगठनों में बढ़ोतरी हुई वैसे–वैसे साम्यवादी साहित्य भी बढ़े। इन साम्यवादी संगठनों में से अनेक कम्युनिस्ट

67. रा.अ.ल. वही, पृ0 103.
68. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 411, पृ0 37–42.
69. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 411, पृ0 205.
70. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 280, पृ0 5–7, 69.

इंटरनेशनल से जुड़ गये थे। यही नहीं इन संबंधित संगठनों के कई साम्यवादियों ने अपने प्रकाशन भी प्रारम्भ किए जिनका स्वर कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रकाशनों के समान ही था। चूंकि 1922 की अधिसूचना में केवल 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल' के प्रकाशनों एवं समाचार पत्रों पर रोक लगाई गई थी इसलिए उस अधिसूचना द्वारा कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से संबंधित संगठनों के प्रकाशनों पर कानूनन रोक नहीं लगाई जा पा रही थी। इस समस्या के हल के लिए 22 अप्रैल, 1922 की अधिसूचना में संशोधन करते हुए 22 अक्टूबर, 1927 को अधिसूचना में संशोधन संख्या–105 द्वारा उसमें 'कम्युनिस्ट' इंटरनेशनल शब्द के ठीक पश्चात् 'अथवा सम्बन्धित संगठन' शब्द जोड़ दिया गया।[71] इस संशोधन के पश्चात कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से संबंधित संगठनों के प्रकाशनों पर रोक के लिए भी वैसी ही सूची बनने और संवर्धित होने लगी जैसी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रकाशनों एवं समाचार पत्रों पर रोक के लिए बनती और संवर्धित होती रही थी।[72]

वर्ष 1927 के अंतिम महीने में साईमन कमीशन की घोषणा और भारत में कमीशन के विरोध के कारण अशांति बनी रही। 1928 के प्रारंभ से ही कांग्रेस ने कमीशन का जोरदार बहिष्कार किया। कांग्रेस जब अपने कार्यक्रम की ओर आगे बढ़ रही थी, दूसरी तरफ क्रान्तिकारी देशभक्त अपने तरीकों से ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन का विरोध कर रहे थे। देश में विस्फोट एवं राजनैतिक डकैती बढ़ गई थी। क्रांतिकारी संस्थाएं, अपने विचारों को जन सामान्य तक पहुंचाने के लिए पर्चों एवं पुस्तिकाओं को मेलों और बाजारों में बांट रहे थे।[73]

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नवम्बर 1928 में प्रसिद्ध पत्रिका *चांद* ने 'फांसी अंक' शीर्षक से एक विशेषांक प्रकाशित किया। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के संपादन में प्रकाशित इस अंक में अपने समय के कई क्रांतिकारियों ने छद्म नामों से लेख दिए जिनमें भगत सिंह भी शामिल थे। इस पुस्तक में केवल 'फांसी' पर ही कई लेख थे जिस पर कानूनी, राजनैतिक एवं सामाजशास्त्रीय ढंग से विचार किया गया था। वस्तुतः

71. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 280, पृ0 75.
72. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 280, पृ0 55, 77, 79, 83, 85.
73. एन. गेराल्ड बैरियर, पृ0 103–104, 1976.

चांद का 'फांसी' अंक क्रांतिकारियों के विचारों का वह दस्तावेज है, जिसके साए में क्रांतिकारियों को फांसी का फन्दा 'मृत्यु का अस्त्र' नहीं 'विजय की जयमाल' लगती थी। जैसा कि निश्चित था, औपनिवेशिक प्रशासन ने *चांद* के फांसी अंक को प्रतिबंधित कर दिया।[74] *चांद* के 'फांसी' अंक में देश के प्रति समर्पण व बलिदान की जो उत्कट भावना प्रदर्शित की गई थी, कुछ ही समय बाद क्रांतिकारियों ने दर्शा दिया कि उनकी 'फांसी' की यह तैयारी केवल हृदय में उठने वाले उद्‌गारों का बुलबुला नहीं था।

8 अप्रैल, 1929 को हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी की ओर से भगत सिंह ने यह जानते हुए भी कि पकड़े जाने पर फांसी निश्चित है, केन्द्रीय विधान सभा में 'इंकलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए बम फेंका। भगत सिंह और उनके साथियों ने गिरफ्तारी के बाद बांटने वाले चित्र व पर्चों की तैयारी पहले से ही कर रखी थी। जैसा कि क्रांतिकारियों को आशा थी, बम की घटना, मुकदमें की कार्यवाही, और भूख हड़ताल इत्यादि ने आम जनता के भीतर राजनैतिक दिलचस्पी पैदा करने का काम किया।[75] 1929 में प्रतिबंधित साहित्य के इन कुछ उदाहरणों से इस समय देश में क्रांतिकारी विचारों एवं क्रांतिकारियों की प्रसिद्धि को महसूस किया जा सकता है

(1) *परिवर्तन*, उर्दू समाचार पत्र, अंक 1 जनवरी, 1929, लेख ''देशभक्त खुदीराम बोस''।
(2) हिन्दी में हिन्दी की भाषा की एक पुस्तक *भारत में अंग्रेजी राज* का विज्ञापन।
(3) *भारत में अंग्रेजी राज*, हिन्दी पुस्तक, दो खण्डों में।
(4) *आयरलैण्ड का स्वातंत्र्य युद्ध* (हिन्दी पुस्तिका)।
(5) *व्यग्र बंगाली* (हिन्दी पुस्तिका)।
(6) *वन्देमात्रम* (पुस्तिका)।
(7) *खून के आंसू* (हिन्दी पुस्तक)।[76]

74. राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली। प्रतिबंधित साहित्य, आवाप्ति संख्या, 357–1101.
75. एन. गेराल्ड बैरियर, पृ0 103–104, 1976.
76. रा.अ.ल होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 44, पृ0 3, 9, 15, 17.

वर्ष 1930 के प्रारम्भ में ही भारतीय राजनैतिक वातावरण, कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन की घोषणाओं से गर्मा उठा। कांग्रेस का समर्थन बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा था। देश में 'नमक सत्याग्रह', और क्रांतिकारी गतिविधियों से अराजकता को बढ़ते देख इरविन, राज्य सचिव और प्रांतीय प्रमुखों से बातचीत कर नये उपायों की ओर उन्मुख हुआ। अप्रैल से जुलाई 1930 के मध्य ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने सात अध्यादेश पारित किए। इन अध्यादेशों ने कार्यपालिका के अधिकार बहुत अधिक बढ़ा दिए। जिसके कारण उग्रवाद एवं महत्वपूर्ण सेवाएं जैसे प्रशासन, पुलिस, सैन्य, तथा संचार व्यवस्थाओं हेतु सामान्य दण्ड प्रक्रिया रद्द कर दी गई। इसमें से दो अध्यादेश प्रेस को सीधे प्रभावित करने वाले थे :

(1) प्रेस अध्यादेश II (27 अप्रैल, 1930)

(2) अनाधिकृत समाचार पत्र एवं पत्रकों पर नियंत्रण हेतु अध्यादेश।

27 अप्रैल 1930, के प्रेस अध्यादेश II द्वारा एक बार पुनः देश में अधिकारियों को जमानत राशि मांगने और प्रकाशनों को प्रतिबंध की शक्ति प्रदान कर दी गई। इस अध्यादेश के अंतर्गत जून, 1930 तक लगभग 150 प्रकाशनों को औपचारिक चेतावनी दी गई। देश भर में लगभग 400 पुस्तकों एवं पुस्तिकाओं, 40 पोस्टरों एवं 50 समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाए गए।[77] इनमें से कई समाचार पत्र संयुक्त प्रांत के थे। जिनमें से इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाला *सत्याग्रह समाचार*, उल्लेखनीय पत्र है। अभ्युदय प्रेस इलाहाबाद से मुद्रित होने वाले *'सत्याग्रह समाचार'* को बैजनाथ कपूर ने 15 अप्रैल, 1930 से निकालना प्रारम्भ किया था। *सत्याग्रह समाचार* गांधी के विचारों एंव कांग्रेस के कार्यक्रम संबंधी खबरों को प्रमुख स्थान देता था। 9 मई, 1930 को मुख्य सचिव कुंवर जगदीश प्रसाद ने इलाहाबाद के जिला मजिस्ट्रेट को आदेश दिया *सत्याग्रह समाचार* के प्रकाशक, बैजनाथ कपूर को जमानत राशि के लिए नोटिस जारी की जाए। मुख्य सचिव के आदेश का पालन करते हुए अभ्युदय प्रेस इलाहाबाद के संरक्षक को 2000 रूपये की एवं *सत्याग्रह समाचार* के प्रकाशक को 1000 रूपये की जमानत राशि जमा करने के आदेश दे दिए गए।[78]

77. एन. गेराल्ड बैरियर, पृ0 109–114, 1976.

78. रा.अ.ल होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 106, पृ0 79, 81, 83.

बैजनाथ कपूर जैसा कि पहले ही निर्णय कर चुके थे, अपने पत्र की प्रेस द्वारा मुद्रित प्रति निकालने की बजाय 15 मई, 1930 से पत्र की 'साइक्लोस्टाइल्ड' प्रतियाँ अपने पाठकों तक पहुंचाने लगे।[79] इस बीच 18 जून, 1930 को 'साइक्लोस्टाइल्ड' *सत्याग्रह समाचार* का विशेषांक निकला जिसे सरकार ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 124–ए के अंतर्गत दण्डित करने योग्य करार दिया। दण्ड प्रक्रिया संहिता 99 ए के अंतर्गत इस विशेषांक को 2 जुलाई, 1930 को प्रतिबंधित कर दिया गया।[80] हालांकि इसके बावजूद *सत्याग्रह समाचार* किसी–न–किसी प्रकार निकलता रहा।

ऐसे ही एक मामले में कानपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र *वर्तमान* के मुद्रक व प्रकाशक से दो–दो हजार की जमानत राशि मांगी गई। *वर्तमान* पत्र के संपादक रमाशंकर अवस्थी ने तो इस अध्यादेश के विरूद्ध जैसे 'अवज्ञा' का एक नया मोर्चा ही खोल लिया। *वर्तमान* में 21 जुलाई, 1930 के अंक में लिखते हुए उन्होंने कहा कि :

> ''वायसराय द्वारा लाया गया प्रेस अध्यादेश पूरी तरह से दमनात्मक है। मैं आशा करता हूँ कि मेरी कलम से निकला हर एक शब्द इसका विरोध करे और हर कदम पर इसका उल्लंघन करें। कभी जब भारतीय स्वतंत्रता (संघर्ष) का असली इतिहास लिखा जाएगा तब उसमें अन्य देशों के लोग निश्चित रूप से पढेंगें कि किस प्रकार गर्व के नशे में चूर ब्रिटिश शक्ति ने शांतिप्रिय सत्याग्रह आन्दोलन के समय प्रेसों को जब्त कर लिया, और कैसे जनता तक सही सूचना पहुंचाने वाले समाचार पत्रों को गला घोंट कर मार डाला। मुझे विश्वास है कि उस इतिहास में *वर्तमान* की यह हानि जरूर स्थान पाएगी''।[81]

समाचार पत्र विभाग द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार प्रेस अध्यादेश 1930 के अंतर्गत संयुक्त प्रांत के 52 प्रेसों से जमानत राशि

79. रा.अ.ल. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 106, पृ0 87.
80. रा.अ.ल. वही, पृ0 93.
81. रा.अ.ल. पुलिस, पत्रावली संख्या, 1030, पृ0 4, 21, 23.

मांगी गई थी तथा 84 प्रेसों को चेतावनी दी गई थी। इसी प्रकार इस समय तक संयुक्त प्रांत के 29 समाचार पत्रों से जमानत राशि मांगी गई एवं 63 समाचार पत्रों को चेतावनी दी गई।[82]

बन्दी से बचने के लिए *आज* (बनारस), *सत्याग्रह समाचार* (इलाहाबाद), *वर्तमान* (कानपुर) जैसे पत्रों ने पत्रों को *साइक्लोस्टाइल* रूप में निकालने की तरकीब निकाली। वास्तव में प्रशासन इस 'तरकीब' के प्रति निरुत्तर था। प्रशासन के सामने समस्या केवल स्थापित पत्रों का *साइक्लोस्टाइल* हो जाना भर नहीं था, इस समय देश के एक बड़े भाग से अनाधिकृत समाचार पत्र, पत्रकों, पर्चों, पुस्तिकाओं, की जैसे बाढ़ सी आई हुई थी। इस साहित्य में कम्युनिस्ट विचारों से प्रेरित साहित्य, क्रांतिकारी साहित्य, सांप्रदायिक साहित्य, एवं महात्मा गांधी के विचारों से प्रेरित साहित्य व कांग्रेसी साहित्य सभी कुछ सम्मिलित था। चूंकि प्रेस अध्यादेश 1930 (1930 का II) केवल उन्हीं प्रेस, समाचार पत्र, पत्रिकाओं पर लागू होता था, जो 'प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट, 1867' के अंतर्गत पंजीकृत होते थे, इसलिए प्रशासन के पास ऐसे अवैध एवं अनाधिकृत समाचार पत्र व पत्रकों से निपटने के लिए एक नए कानून की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा 2 जुलाई, 1930 को 'अनाधिकृत समाचार पत्र व पत्रकों पर नियंत्रण' के लिए अध्यादेश संख्या VII लाया गया।[83]

यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसे अनाधिकृत साहित्य, पर्चे, पुस्तिकाएँ, जिन्हें 1930 के अध्यादेश VII द्वारा प्रतिबंधित किया गया उसमें एक बड़ी संख्या महात्मा गांधी के विचारों से प्रेरित पर्चों और पुस्तिकाओं की थी। उन्नाव के गया प्रसाद 'भारतीय' के *'रण निमंत्रण'* जैसे पर्चे इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। सितम्बर 1930 ई. के पहले सप्ताह में कानपुर और उन्नाव की गलियों में, चस्पा और चौराहों पर बांटे गये, इस पर्चे को प्रशासन ने न केवल प्रतिबंधित किया, बल्कि गया प्रसाद को एक वर्ष का कारावास भी दिया गया।[84] जहां तक यह पर्चा सामूहिक इस्तीफे

82. रा.अ.ल पुलिस, पत्रावली संख्या, 1012 पृ0 45.
83. रा.अ.ल. पुलिस, पत्रावली संख्या, 1124, पृ0 1–5.
84. प्रतिबंधित साहित्य आवाप्ति संख्या, 1128–29, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, एवं पत्रावली संख्या, 1385 रा.अ.ल. (परिशिष्ट–1)।

के द्वारा प्रशासन को पंगु करने का प्रयास करता दिखता है दूसरी तरफ *डिक्टेटर* नगर व जिला कांग्रेस–कमेटी कानपुर द्वारा *'किसान भाईयों के प्रति'* शीर्षक से प्रकाशित पर्चा लेखक किसानों को देश और प्रशासन की वास्तविक स्थिति से अवगत कराता है।'[85] वहीं अधिनायक, सत्याग्रह संग्राम काशी का पर्चा ब्रिटिश अदालतों के बहिष्कार की हिदायत देता है[86] और काशी से ही निकलने वाला पत्र *शंखनाद*, देशवासियों को चालबाज अंग्रेजों से होशियार रहने को कहता है।[87]

देश के विभिन्न भागों में, प्रकाशनों के ऐसे उदाहरणों ने सरकार को प्रेस पर वास्तविक नियंत्रण के लिए अस्थाई अध्यादेशों के स्थान पर अन्य और अधिक मजबूत और विशेषाधिकार युक्त कानून लाने की प्रेरणा दी। अपनी इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने अक्टूबर 1931 में भारतीय प्रेस (विशेषाधिकार) अधिनियम 1931 (1931 का XXIII) पारित किया।[88] इस नए प्रेस कानून ने पुराने बार–बार नवीनीकरण किये जा रहे अध्यादेशों की मानो पुष्टि कर दी थी। इसके बाद प्रेस और मुद्रित साहित्य पर प्रतिबंध और जमानत राशियाँ मांगने की एक नई *'फ़िहरिस्त'* शुरू हुई। इस अधिनियम में पुलिस के पास तलाशी और तलाशी में प्राप्त सामग्री को जब्त कर लेने के विस्तृत अधिकार थे।

ब्रिटिश पुलिस लगातार उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रेसों पर संदिग्ध सामग्री की तलाश में छापे डाल रही थी। मार्च 1932 में कानपुर की पुलिस को सूचना प्राप्त हुई कि चन्द्रा फैन्सी प्रेस, कानपुर में 'प्रतिबंधित चित्र' छप रहे हैं। सूचना प्राप्त होते ही चन्द्रा फैन्सी प्रेस कानपुर की तलाशी ली गई। पुलिस जिन प्रतिबंधित चित्रों की तलाश में यहां आई थी वह तो उसे नहीं प्राप्त हुए किन्तु तलाशी में उसे भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त के नये चित्र अवश्य प्राप्त हुए जो चन्द्रा फैन्सी प्रेस ने ही छापे थे।[89] प्रशासन ने प्रेस के विरूद्ध कार्रवाई करते

85. प्रतिबंधित साहित्य, आवाप्ति संख्या, 1163, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
86. प्रतिबंधित साहित्य, आवाप्ति संख्या, 1167, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
87. प्रतिबंधित साहित्य, आवाप्ति संख्या, 1184, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।
88. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1589/1931, पृ0 3.
89. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1860/1932, पृ0 1 (परिशिष्ठ–2)।

हुए दिनांक 22 जून, 1932 को प्रेस के स्वामी शिव नरायण से 500 रूपये की जमानत राशि मांग ली[90] तथा 1 जून 1932 को अधिसूचना संख्या 1256–1/VIII–1860 द्वारा अधिसूचित करते हुए, कानपुर, मनीराम की बगिया निवासी चित्र एवं शीशा व्यापारी बाबू लाल भार्गव द्वारा 'वन्देमातरम' शीर्षक सहित प्रकाशित एवं चन्द्रा फैन्सी प्रेस कानपुर, द्वारा छापी गई, भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त के चित्रों को प्रतिबंधित कर दिया।[91] ऐसी ही एक तलाशी के दौरान पुलिस को नैनीताल में *'ग्लोब राइटिंग पैड'* प्राप्त हुए जिसके मुख्य पृष्ठ पर भगत सिंह का चित्र बना हुआ था। 27 अगस्त, 1932 को अधिसूचना संख्या 2134/VIII–1860 द्वारा अधिसूचित करते हुए *'ग्लोब राइटिंग पैड'* के समस्त मुख्य पृष्ठों पर प्रतिबंध व जब्ती के आदेश दे दिए गए।[92]

इसी प्रकार, बाल कृष्ण शर्मा जो प्रताप प्रेस कानपुर का कार्यभार एवं समाचार पत्र *दैनिक प्रताप* का संपादकत्व संभाल रहे थे, उन्होंने 1932 में प्रताप प्रेस कानपुर से शिव नारायण टण्डन द्वारा लिखित पुस्तक 'बोल्शेविक रूस' मुद्रित एवं प्रकाशित की। इस पुस्तक में रूस और भारत की परिस्थितियों में साम्यता दिखाते हुए भारत में भी रूस की भांति क्रांति की अपेक्षा की गई थी। प्रशासन को इस पुस्तक के बारे में जानकारी होने में लगभग दो वर्ष लग गए। 1934 में इस पुस्तक के बारे में पता चलते ही इसे प्रतिबंधित करने की संस्तुति की गई।[93] 23 फरवरी, 1934 को अधिसूचना संख्या 327/VIII–1025 द्वारा 'बोल्शेविक रूस' की सभी प्रतियों को जब्त करने का आदेश अधिसूचित कर दिया गया।[94] स्थानीय प्रशासन ने बाल कृष्ण शर्मा पर भी कार्रवाई करते हुए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 124 ए के अंतर्गत मुकदमा चलाने की संस्तुति कर दी।[95]

तीस के दशक के प्रारम्भिक वर्षो में, साम्प्रदायिक साहित्य के रूप में प्रतिबंधित साहित्य के इतिहास में एक पुरानी किन्तु इस बार और

90. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1860, पृ0 69, 1932.
91. रा.अ.ल. होम पुलिस, वही, पृ0 27, 1932.
92. रा.अ.ल. होम पुलिस, वही, पृ0 55, 1932.
93. रा.अ.ल. होम पुलिस, वही, 1025, पृ0 1–15, 17.
94. रा.अ.ल. होम पुलिस, वही, पृ0 41.
95. रा.अ.ल. होम पुलिस, वही, पृ0 37.

भी गहरी प्रवृत्ति को जोर पकड़ता हुआ पाते हैं। 27 मार्च 1934 को बकरीद के अवसर पर अयोध्या में दंगे हुए थे। 7 मई के अंक में 'अयोध्या की घटना का सबक' शीर्षक से लेख लिखते हुए *हमदम* ने हिन्दुओं पर बाबरी मस्जिद को तोड़ने का आरोप लगाया तथा यह भी लिखा कि इस कार्य में हिन्दू प्रशासनिक अधिकारियों ने तटस्थता का रवैय्या अपनाकर हिन्दुओं की मदद की थी। हिन्दू महासभा के डॉ. मुंजे पर आरोप लगाया कि, उनका इरादा वास्तव में मस्जिद को जड़ से ही उखाड़ देने का था। *हमदम* अपने लेख में आगे न केवल 'जन्मस्थान' उखाड़ने, अपवित्र करने की बात करता है, बल्कि ऐसा न कर पाने की स्थिति में, यह भावनायें आगे तक ले जाने की बात करता है।[96]

इन्हीं दंगों पर बिजनौर से प्रकाशित होने वाले पत्र *मदीना* ने 'संयुक्त प्रांत के हिन्दुओं की खूनी प्यास' शीर्षक से लेख प्रकाशित किया। इस लेख में भी इस घटना के पीछे संयुक्त प्रांत सरकार की शह बताया गया।[97] 9 मई, 1934 को *मदीना* में ही प्रकाशित एक कविता 'अयोध्या की बाबरी मस्जिद की फरियाद' में लेखक सैय्यद फारूक बनपरी खुद 'बाबरी मस्जिद' की ओर से, मुसलमानो को अपने अपमान का बदला लेने के लिये उकसाते हैं।[98]

इसी समय डिप्टी कमिश्नर फैजाबाद जे.पी. निकोलसन ने संयुक्त प्रांत के मुख्य सचिव को बनारस से 14 अगस्त, 1934 को डाक द्वारा अयोध्या प्रेषित पर्चों के बारे में जानकारी दी, जिसमें किन्हीं अयोध्यादास द्वारा प्रकाशित एक पर्चे में *गौमाता के संदेश* के रूप में गौरक्षार्थ हर एक वस्तु हिन्दुओं से खरीदने की अपील की गई थी। रामेश्वर प्रेस काशी से ही छपे एक दूसरे पर्चे में मुसलमानों से 'गौमाता की रक्षा के लिए कोई भी वस्तु मुसलमानों से न खरीदने की अपील की गई थी।' सपरिषद गवर्नर जनरल के आदेश से इन पर्चों को 18 सितम्बर, 1934 को प्रतिबंधित कर दिया गया।[99] साम्प्रदायिक साहित्य

96. रा.अ.ल. वही, पृ0 24–28.
97. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1045, पृ0 17.
98. रा.अ.ल होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1045, पृ0 19, 21.
99. रा.अ.ल. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1576, पृ0 3, 4, 19.

के ऐसे उदाहरण समकालीन समाज में विभाजन की दरारों का भरपूर एहसास देते हैं जो आगे न केवल लगातार गहराते गए बल्कि आगे चलकर देश को विभाजन के रूप में बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

दूसरी तरफ, देश की स्वतंत्रता हेतु देशवासियों को जागृत करने वाले साहित्य में अभी भी कमी नहीं आने पाई थी। नरेन्द्र पब्लिशिंग हाउस, रैन बसेरा, चुनार ने नवजादिक लाल श्रीवास्तव द्वारा लिखित एक पुस्तक *''पराधीनों की विजय यात्रा''* को 1935 में प्रकाशित किया। वस्तुतः यह उन लेखों का एक संग्रह था जो आर. सहगल के साप्ताहिक पत्र *भविष्य* में प्रकाशित हुए थे। आर. सहगल *चांद* तथा *भविष्य* जैसे पत्रों के स्वामी और संपादक रह चुके थे। चूंकि इस पुस्तक में विश्व के विभिन्न देशों और भारत के स्वतंत्रता संघर्ष, विशेषकर क्रान्तिकारी हिंसात्मक संघर्ष को महिमा मंडित किया गया था, इसलिए 15 मई, 1935 को इसे अधिसूचना संख्या 888/VIII–1073 द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया। कुछ समय बाद सहगल ने इस प्रतिबंध को हटाने के लिए हाईकोर्ट में अपील की, किन्तु हाईकोर्ट ने उनकी यह अपील खारिज कर दी। सहगल ने हार नहीं मानी। 1937 में एक बार पुनः उन्होने संयुक्त प्रांत सरकार के प्रमुख पण्डित गोविन्द बल्लभ पंत के पास इस प्रतिबंध को हटाने के लिए आवेदन किया। इसके बावजूद कि सी.आई. डी. एवं कई प्रशासनिक अधिकारियों की राय पुस्तक *'पराधीनों की विजय यात्रा'* पर से प्रतिबंध न हटाने की थी, तत्कालीन सरकारों की नीतिगत बदलावों को ध्यान में रखते हुए दिनांक 21 मई, 1938 को अधिसूचना संख्या 706/VIII–1730 द्वारा पुरानी अधिसूचना संख्या 888/VIII–1073, दिनांक 15 मई, 1935 को निरस्त करते हुए *''पराधीनों की विजय यात्रा''* पर से प्रतिबंध हटा लिया गया।[100]

किसी प्रतिबंधित पुस्तक से प्रतिबंध हटा लिया जाना मुद्रित साहित्य एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए किसी नई सुबह से कम नहीं था। किन्तु यह नई सुबह अभी विवेच्य काल (1907 से 1935) से थोड़ी दूर थी। वस्तुतः प्रेस (विशेषाधिकार) अधिनियम 1931, जो समाप्त होने के पहले ही लगातार 1935 तक बढ़ाया जाता रहा था, की अवधि 19

100. रा.अ.ल., पुलिस, पत्रावली संख्या, 1073, पृ0 3, 9, 11, 17, 1935.

दिसम्बर, 1935 को एक बार पुनः समाप्त होने वाली थी। यही नहीं, भारत में प्रशासन और लंदन में इंडिया आफिस, दोनों ही एक नए प्रेस बिल पर सहमत थे, किन्तु भारत और लंदन में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई कि न तो नया बिल लाया जा सका, न ही प्रेस (विशेषाधिकार) अधिनियम 1931 की अवधि आगे बढ़ायी जा सकी। ऐसे में भारत सरकार ने कानून की उस धारा का प्रयोग किया जिसे अब तक प्रयोग नहीं किया गया था। यह धारा थी, भारत सचिव द्वारा भारत में आपातकाल घोषित किया जाना, जिससे किसी बिल पर संसद में चर्चा से बचा जा सकता था। भारत राज्य सचिव द्वारा भारत में आपातकाल घोषित करते हुए, प्रेस पर प्रतिबंधात्मक प्रावधानों के खत्म होने के पहले ही नए बिल को कानून के रूप में पारित करके भारत में नियंत्रणकारी प्रेस कानूनों को समाप्त होने से बचा लिया। भारत में प्रेस पर नियंत्रण औपनिवेशिक प्रशासन के लिए कितना महत्वपूर्ण था, भारत राज्य सचिव के इस कदम से सहज ही समझा जा सकता है।[101] सच यह है कि यह काल तो केवल कठोर प्रतिबंध और साल दर साल लम्बी होती जाने वाली प्रतिबंधित साहित्य की सूचियों के लिए जाना जाएगा। ज्ञातव्य है कि प्रतिबंधित साहित्य की यह सूचियां केवल ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा भारतीयों पर वैचारिक अभिव्यक्ति के दमन की गवाह भर नहीं है, बल्कि साल दर साल प्रतिबंधित साहित्य की संख्या का बढ़ते जाना उस दमन के प्रत्युत्तर और स्वतंत्रता की जद्दोजहद हेतु वैचारिक संघर्ष का साक्षात प्रमाण भी है।

101. एन. गेराल्ड बैरियर, पृ0 134, 1976.

परिशिष्ट–1

वन्दे मातरम्।

रण निमंत्रण।

आज दिन देश पराधीन है, गुलाम है। गुलामी कहीं अच्छी मर जाना अच्छा है। पतंग की तरह दीपक में जल कर मर जाना अच्छा है। लेकिन देश को गुलामी की जंजीर में जकड़ कर और खुद गुलाम होकर जीना बेकार है स्वतन्त्र रहना और नर्कवास अच्छा है लेकिन परतंत्रता में रहते हुये स्वर्ग सुख भी कौड़ी का है तुलसीदास जी ने ठीक कहा है [illegible] यह सरकार, अन्यायी सरकार है, दुष्ट है, शैतान है इसने हमें अपनी संस्कृति [illegible] भी नहीं रक्खा बल्कि गुलाम भी बना डाला। आज हम कांग्रेस की आज्ञा से अहिंसा की लड़ाई लड़ रहे हैं। हमारा धर्म है कि इस राज्य के राज काज करने का ढंग ही बदल दें अगर यह सरकार नहीं सुनती और अपने राज करने का ढंग नहीं बदलती तो हमें चाहिये कि सब भारतवासी मिल कर इसे मजबूर करें कि यह अपना बोरिया बंधना बाँध सात समुन्द्र तेरह नदी पार चली जाय। इसके लिये यदि हमें अधिक से अधिक बलिदान भी करना पड़े तो भी पीछे हटने का नाम न लें। अगर हम सब भारतवासी चाहें तो एक २ मुट्ठी मिट्टी फेंक कर इन सबों को दबा दें लेकिन यहाँ कांग्रेस की आज्ञानुसार अहिंसा की लड़ाई हमें लड़नी है और इस कोशिश में हैं कि इसकी जड़ उलट दें भले ही हमारे पास तोप तलवार बन्दूकें न हों। [illegible]

उसे कागजों में बदल दिया है किसी के पास १०० की रुपये के सौ नोट हों तो समझना चाहिये कि उसके पास दस हजार रुपये हैं लेकिन यह दस हजार नाम के ही दस हजार हैं उसकी कीमत असल में यही है जो रद्दी कागजों की। आज सरकार ने यह कानून निकाला है कि जो कांग्रेस के सिपाही हों और उनके रुपये बैंकों में [illegible]

[illegible]

गयाप्रसाद भारतीय, मंत्री।

कांग्रेस कमेटी [illegible] (उन्नाव)।

प्रीमियर प्रेस, कानपुर।

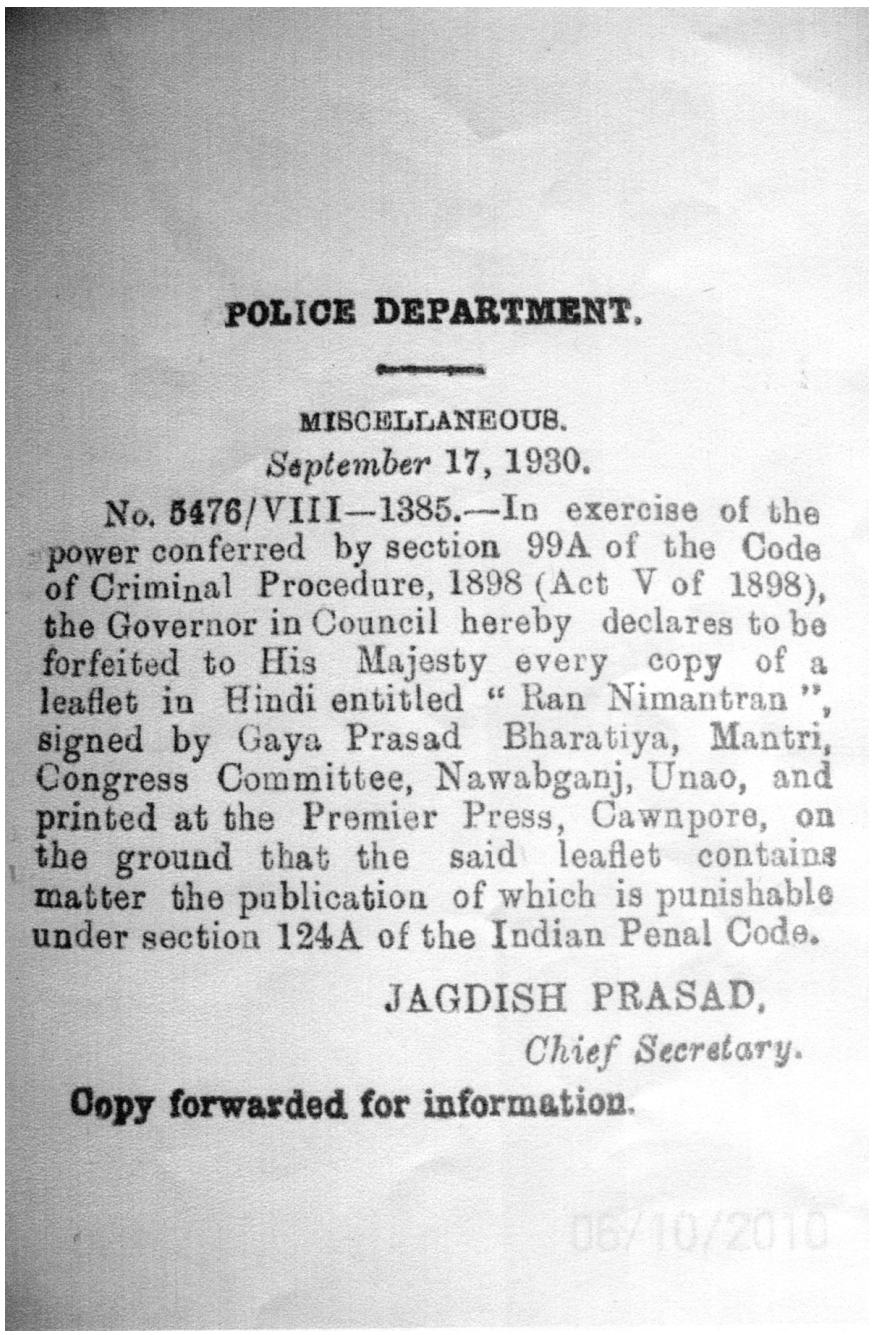

POLICE DEPARTMENT.

MISCELLANEOUS.

September 17, 1930.

No. 5476/VIII—1385.—In exercise of the power conferred by section 99A of the Code of Criminal Procedure, 1898 (Act V of 1898), the Governor in Council hereby declares to be forfeited to His Majesty every copy of a leaflet in Hindi entitled "Ran Nimantran", signed by Gaya Prasad Bharatiya, Mantri, Congress Committee, Nawabganj, Unao, and printed at the Premier Press, Cawnpore, on the ground that the said leaflet contains matter the publication of which is punishable under section 124A of the Indian Penal Code.

JAGDISH PRASAD,
Chief Secretary.

Copy forwarded for information.

06/10/2010

राजकीय अभिलेखागार लखनऊ। पत्रावली संख्या, 1385, पर्चा 'रण निमन्त्रण' पर प्रतिबन्ध की अधिसूचना।

परिशिष्ट–2

रा.अ.ल.। पत्रावली संख्या, 1860, चित्र बटुकेश्वर दत्त के प्रकाशन के कारण चन्द्रा फेन्सी प्रेस कानपुर से जमानत की मांग, प्रकाशा बाबूलाल भार्गव, *पिक्चर एण्ड ग्लास मर्चेन्ट* मनीराम की बगिया, कानपुर।

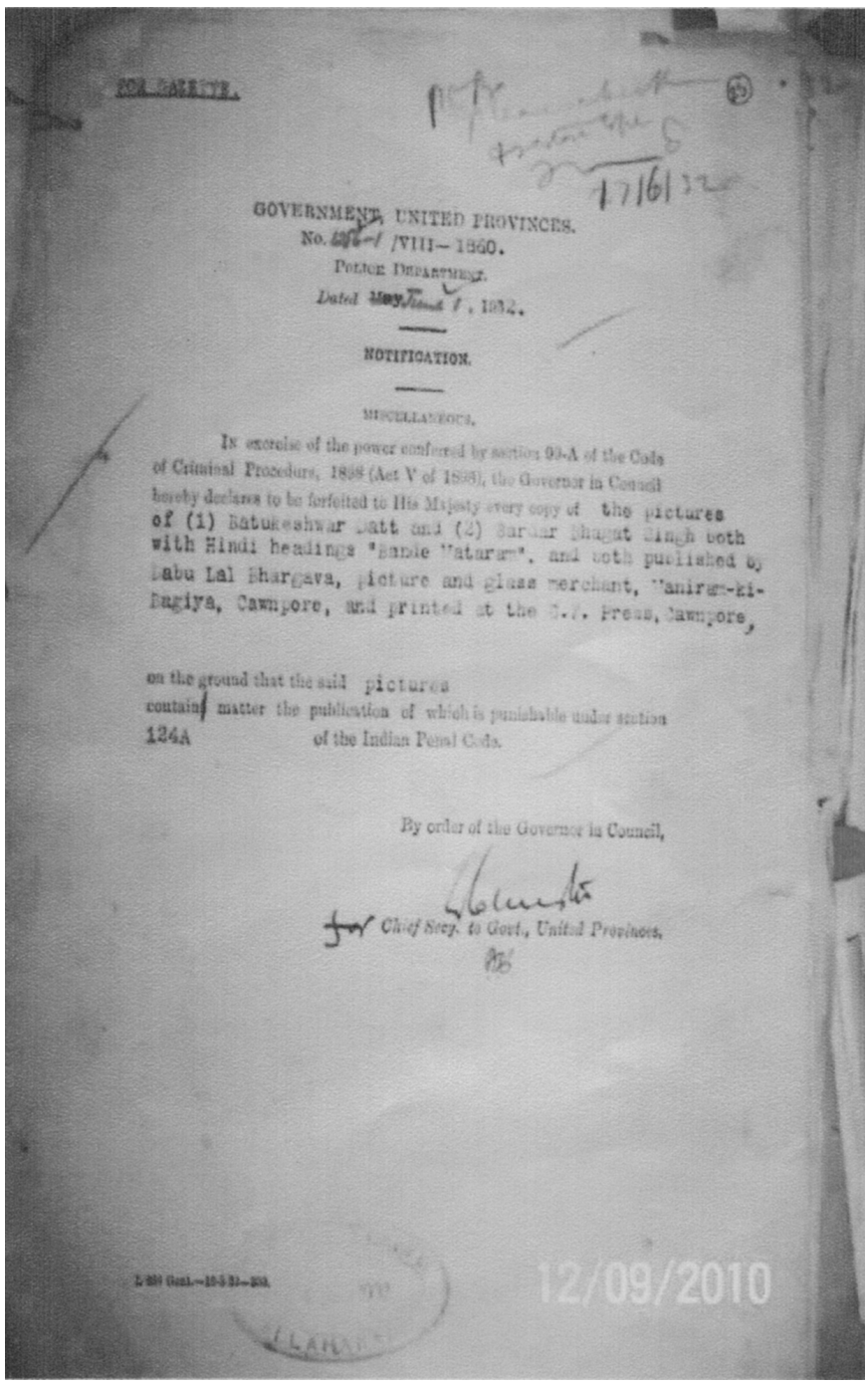

FOR GAZETTE.

GOVERNMENT, UNITED PROVINCES.
No. /VIII—1860.
POLICE DEPARTMENT.
Dated , 1932.

NOTIFICATION.

MISCELLANEOUS.

IN exercise of the power conferred by section 99-A of the Code of Criminal Procedure, 1898 (Act V of 1898), the Governor in Council hereby declares to be forfeited to His Majesty every copy of the pictures of (1) Batukeshwar Datt and (2) Sardar Bhagat Singh both with Hindi headings "Bande Mataram", and both published by Babu Lal Bhargava, picture and glass merchant, Maniram-ki-Bagiya, Cawnpore, and printed at the C.V. Press, Cawnpore,

on the ground that the said pictures contain matter the publication of which is punishable under section 124A of the Indian Penal Code.

By order of the Governor in Council,

for Chief Secy. to Govt., United Provinces.

रा.अ.ल.। पत्रावली संख्या, 1860, चित्र बटुकेश्वरदत्त पर प्रतिबन्ध की अधिसूचना।

संदर्भ

प्राथमिक स्रोत

क– राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

1. होम पॉलिटिकल, पत्रावली संख्या, 51–53, *स्वराज्य* पर अभियोग।

2. होम पॉलिटिकल, पत्रावली संख्या, 124–128, दिसम्बर, वर्ष 1908 *स्वराज्य* पर अभियोग।

3. होम पॉलिटिकल, पत्रावली संख्या, 1–15, नवम्बर, वर्ष 1908, होतीलाल वर्मा व राम सरूप पर अभियोग।

4. होम पॉलिटिकल ए, पत्रावली संख्या, 81–95, अगस्त, वर्ष 1910, *स्वराज्य* के संपादक नन्द गोपाल पर अभियोग।

5. होम जुडीशियल, पत्रावली संख्या, 130–134, मई, वर्ष 1909, राजद्रोह आरोपी व्यक्तियों के चित्रों व उनके लेख पर प्रतिबंध।

6. प्रतिबंधित साहित्य, आवाप्ति संख्या, 357 *चाँद* : 'फांसी' अंक, संख्या–1, नवम्बर 1928, चतुरसेन शास्त्री, इलाहाबाद, चांद कार्यालय, 1928।

7. प्रतिबंधित साहित्य आवाप्ति संख्या, 1128–29 प्रतिबंधित पर्चा 'रण निमंत्रण'।

8. प्रतिबंधित साहित्य, आवाप्ति संख्या, 1163 प्रतिबंधित पर्चा 'किसान भाईयों के प्रति'।

9. प्रतिबंधित साहित्य, आवाप्ति संख्या, 1167 अधिनायक, सत्याग्रह संग्राम काशी का प्रतिबंधित पर्चा।

10. प्रतिबंधित साहित्य, आवाप्ति संख्या, 1184 प्रतिबंधित पत्र *शंखनाद।*

ख– राजकीय अभिलेखागार लखनऊ, उत्तरप्रदेश।

1. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 273, समाचार पत्रों पर अभियोग से संबंधित आदेश।

2. पॉलिटिकल विभाग, पत्रावली संख्या, 320, भारत में समाचार पत्रों पर नियंत्रण।

3. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 260, संयुक्त प्रांत प्रोसीडिंग, जुलाई–1910, 34 से 37 राजद्रोहपूर्ण नाटकों के मंचन से बचाव।

4. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 282, पंजीकृत प्रकाशन, वर्ष 1910.

5. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 198 जॉन स्टुअर्ट मिल 'एस्से ऑन लिबर्टी' का हिन्दी अनुवाद।

6. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 195, *मुस्लिम गज़ट* लखनऊ से जमानत की मांग।

7. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 473, *अभ्युदय* इलाहाबाद में आपत्तिजनक लेख।

8. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 152, ड्रामेटिक परफारमेंन्स एक्ट, 1876 में संशोधन का प्रस्ताव।

9. सामान्य प्रशासन विभाग, पत्रावली संख्या, 449, संयुक्त प्रांत में समाचार पत्रों की काली सूची।

10. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 19, समाचार पत्रों की काली सूची।

11. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 274, संयुक्त प्रांत के समाचार पत्र, सामयिक पत्रिकाओं पर कथन।

12. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 266, भारतीय प्रेस एक्ट 1910 में संशोधन, प्रेस लॉ कमेटी की रिपोर्ट।

13. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 363, विभिन्न समुदायों में साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काने वाले साहित्य से निपटने के प्रयास।

14. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 192, आपत्तिजनक नाटक 'तपस्वी मोहन'।

15. होम पुलिस विभाग पत्रावली संख्या, 411/1923, *स्वदेश* समाचार पत्र, गोरखपुर।

16. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 280, कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रकाशन की सूची।

17. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 44/1929, प्रतिबंधित साहित्य सूची।

18. पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 1030/1930, समाचार पत्र *वर्तमान*, कानपुर।

19. पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 1012/1930, प्रेस अध्यादेश 1930 के अंतर्गत कार्रवाई।

20. पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 1124/1930, अवैध समाचार पत्र व पत्रक अध्यादेश 1930.

21. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 106, *सत्याग्रह समाचार*।

22. होम पुलिस विभाग पत्रावली, संख्या, 1589/1931, भारतीय प्रेस (विशेषाधिकार) अधिनियम, 1931.

23. होम पुलिस विभाग, पत्रावली संख्या, 1860, चन्द्रा फैन्सी प्रेस से जमानत।

24. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1025, पुस्तक *'बोल्शेविक रूस'*।

25. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1045 दंगों पर बिजनौर से प्रकाशित होने वाला पत्र *मदीना* ने 'संयुक्त प्रांत के हिन्दुओं की खूनी प्यास' शीर्षक से लेख।

26. होम पुलिस, पत्रावली संख्या, 1576, पृ. 3,4,19 साम्प्रदायिक पर्चे।

27. पुलिस, पत्रावली संख्या, 1073/1935 पुस्तक *'पराधीनों की विजय यात्रा'*।

द्वितीयक स्रोत

पुस्तक

1. एन. गेराल्ड बैरियर, *बैन्ड कन्ट्रोवर्शियल लिट्रेचर एण्ड पॉलिटिकल कन्ट्रोल इन ब्रिटिश इंडिया* (1907–1947), 1976, मनोहर, दिल्ली।

2. के.जी.जोगेलकर, *प्रेस फ्रीडम–द इंडियन स्टोरी*, 2005, पब्लिकेशन डिवीज़न, मिनिस्ट्री ऑफ इनफार्मेशन, नई दिल्ली।

3. के.बी.मेनन, *द प्रेस लॉज़ ऑफ इंडिया*, 1937, टुटोरियल प्रेस, बम्बई।

4. जे. नटराजन, अनुवादक आर. चेतनक्रांति, *भारतीय पत्रकारिता का इतिहास*, 2002, पब्लिकेशन डिवीज़न, नई दिल्ली।

5. नन्द किशोर त्रिखा, *प्रेस विधि, 1986*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

6. प्रमोद कुमार, *भारत का स्वतंत्रता संग्राम*, 2004, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा।

7. ब्रह्मानन्द; *भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और उत्तर प्रदेश की हिन्दी पत्रकारिता*, 1986, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

8. बी.आर. शर्मा, *फ्रीड़म आफ द प्रेस अन्ड़र द इंडियन कांस्टीटयूशन*, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1993.

9. कीर्ति नारायन, *प्रेस पालिटिक्स एण्ड सोसायटी, उत्तर प्रदेश, 1885–1914*, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.